मूढ़ बनाने का कारखाना

अनिवार्य स्कूली शिक्षा का छद्म पाठ्यक्रम

जॉन टैलर गैट्टी

मूढ़ बनाने का कारखाना

अनिवार्य स्कूली शिक्षा का छद्म पाठचक्रम

जॉन टैलर गैट्टी

भाषांतर – ज्वाला प्रसाद मिश्रा

बनियन ट्री

मूढ़ बनाने का कारखाना
अनिवार्य स्कूली शिक्षा का छद्म पाठ्यक्रम
जॉन टेलर गेट्टो

प्रथम हिन्दी संस्करण 2012

बनियन ट्री
1-बी, धेनु मार्केट, दूसरा माला
इन्दौर – 452003, इण्डिया
टेलीफोन : 91-731-2531488,2532243
मोबाइल : 91-9425904428
ई-मेल : banyantreebookstore@gmail.com
वेबसाइट : www.banyantreebookstore.com

First published in US by New Society Publishers as
DUMBING US DOWN
The Hidden Curriculum of Compulsory Schooling
by John Taylor Gatto

Copyright © 2005 by John Taylor Gatto
Original edition © 1992, *All rights resvered.*
``Transleted & Published by arrangements with New Society Publishers."

अंग्रेजी में सर्वप्रथम यूएस में न्यू सोसाइटी पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित
कॉपीराइट © 2005 जॉन टेलर गेट्टो
मूल संस्करण कॉपीराइट © 1992, *सर्वाधिकार सुरक्षित।*
हिन्दी संस्करण कॉपीराइट © 2012 बनियन ट्री
''भाषांतर एवं प्रकाशन अनुमति पूर्वक।''

ISBN: 978-93-82400-00-4

टाइपसेटिंग : शुभम पाटिल
आवरण डिजाइन : शुभम पाटिल/इशिता कोठारी

भारत में प्रकाशित एवं मुद्रित

MUDH BANANE KA KARKHANA
सिर्फ भारतीय उपमहाद्वीप में बिक्री के लिये

समर्पण

मैं यह पुस्तक अपनी पौती को समर्पित करती हूँ,
गुड्रून मौस गुन्नार्सदौत्तिर, जिसके नाम का
आइसलैण्डिक में अर्थ है "ईश्वर के हस्ताक्षर"
और उसकी माँ ब्रिसेइस को।
अंधेरे में रौशनी और जगमगाहट,
तुम दोनों अंधेरे में प्रकाश भर दो।

अनुक्रमणिका

भारतीय संदर्भ में प्रस्तावना, मनीष जैन 7
प्रस्तावना, थामस मूर 21
परिचय, डेविड अल्बर्ट 25
लेखक के विषय में 38

1. सात-सबक वाला स्कूल अध्यापक 43
2. मनोविकृति स्कूल 61
3. हरित मोनोनगहेला 74
4. हमें कम स्कूल चाहिये, अधिक नहीं 84
5. धर्मसभात्मक सिद्धान्त 108

बाद में : दशम वर्षगांठ संस्करण 127
ताज़ा कलम 2005 अंग्रेजी प्रकाशक की ओर से 135

भारतीय संदर्भ में प्रस्तावना

मनीष जैन

बहुत से लोग प्रश्न कर सकते हैं कि क्या यह पुस्तक भारत के लिये, सचमुच प्रासंगिक है – जहाँ इतने सारे बच्चे स्कूल नहीं जाते, या वे इसे मात्र अमरीकी शिक्षा प्रणाली की पुस्तक कह कर रद्द करने की कोशिश कर सकते हैं। मैं इसके विरुद्ध सचेत करना चाहूँगा। जब मैं इस पुस्तक को पढ़ रहा था, तो मैंने अपने आप को लगभग हर पृष्ठ पर कुछ न कुछ प्रासंगिक रेखांकित करते पाया।

मैं समझता हूँ कि *डम्बिंग अस डाउन* को पढ़ना उन सब के लिये आवश्यक है जो *नई तालीम* और *स्वराज* के गांधीवादी दर्शन की गहराई में उतरने में रुचि रखते हैं, और उनके लिये भी जो शिक्षा के अधिकार का कानून (आरटीई, जो कि हाल ही में बनाया गया है) की गहन दार्शनिक समस्याओं को समझने की इच्छा रखते हैं और साथ ही भारत में व्यापक शिक्षा के विस्तार में। मैंने इस किताब को अपने लिये भी अत्यंत लाभप्रद पाया बतौर अभिभावक मुझ खुद को व अपनी पुत्री को स्कूल से विमुख करने की यात्रा में।

अनेक वर्ष पूर्व मेरे मन में यह विचार आया था कि मैं एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन करूँ जिसमें अध्यापक स्कूल में बच्चों के साथ किये गए अपराधों को स्वयं

स्वीकार करें। मैंने अपने कई मित्रों से पूछा जो शिक्षा पद्धति में काम कर चुके थे कि वे अपनी कहानियाँ बतलाएं और उन अपराधों के लिये क्षमा मांगे जो उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बच्चों के विरुद्ध किये थे। कुछ-कुछ *मुझे क्षमा करो पिता, मैंने अपराध किया है* की तर्ज पर। अनेक भारतीय शिक्षक मित्रों को विचार पसंद आया, पर वे अपने अनुभवों को बांटने के लिये तैयार नहीं हुए। ऐसा करना उन्हें विश्वासघात लगा होगा, या फिर वे डर गए होंगे। जो भी हो *डम्बिंग अस डाउन* उस धारणा का बेहतरीन उदाहरण है जो कभी मैंने सोचा था।

जैसा कि उनके आध्यात्मिक पूर्ववर्ती जॉन होल्ट ने किया था, जॉन टेलर गेट्टो शिक्षक के दृष्टिकोण से लिखते हैं – एक शिक्षक जिसके पास 25 वर्षों का व्यावहारिक खून, पसीने और आँसुओं का अनुभव है। वे ऊँची उड़ान भरने वाले नीति निर्माता या आराम कुर्सीधारी बुद्धिवादी नहीं हैं, अपितु कोई जिसने खंदकों को खोदने का कठिन श्रम किया है और जो जीवन के असली खेल के प्रति सतर्क करना चाहता है। वे गहन निष्ठा और स्पष्टता से लिखते हैं न कि ''ऐसा होना चाहिये'' या ''हो सकता था'', जैसा अधिकांश तथाकथित शिक्षा सुधारक करते हैं। मैं केवल प्रार्थना कर सकता हूँ कि हमारे भारतीय शिक्षक किसी दिन उन अपराधों के प्रति ईमानदार हो जाएंगे जो उनकी कक्षाओं व स्कूलों में होते हैं।

गेट्टो, उस औद्योगिक एक-साइज-सबके-लिये-फिट है स्कूली मॉडल पर भी जबर्दस्त प्रहार करते हैं। जिसके अनुसार वे तर्क देते हैं कि न केवल स्कूल हमारे बच्चों के जीवन के लिये अप्रासंगिक है (कुछ, जिसमें अधिकांश समझदार लोग सहमत होंगे) अपितु वस्तुत: वे क्षतिकारक हैं। *उनका केंद्रीय सिद्धांत है कि कारखाना शिक्षा प्रणाली (फेक्टरी स्कूलिंग) बच्चों तथा समुदायों को भीषण नुकसान पहुँचा रही है।* यह सीखने में बाधक, समाज विरोधी और अलोकतांत्रिक क्रिया है। अपने कार्य के जरिये गेट्टो हमसे पूछते हैं कि स्कूल नाम की उस पवित्र गाय से प्रश्न करो: जिसे यह कह कर प्रचारित किया जा रहा है कि वह समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं पारिस्थितिक बीमारियों का इलाज है क्या वहीं वास्तव में उन बीमारियों के मुख्य कारणों में से एक तो नहीं?

यहाँ यह जान लेना ज़रूरी है कि आज कारखाना स्कूल की परिभाषा केवल सरकारी स्कूलों तक ही सीमित नहीं रह गई है। इसका ढाँचा तथा मूल्य – जिसके मूल में समाज का नियंत्रण है – गैर-औपचारिक सामाजिक कार्यक्रमों में, खिलौनों और खेलकूद में, जिस तरह हम अपनी गोष्ठियाँ और सम्मेलन आयोजित करते हैं, टी.वी और मास-मीडिया में, धार्मिक प्रशिक्षण में, यहाँ तक कि हमारे पारिवारिक जीवन में भी फैल गए हैं।

गेट्टो की आलोचना के केंद्र में संस्थानीकरण का प्रश्न है। संस्थानीकरण से मेरा आशय मानव चेतना और मानव अच्छाई को बड़े-पैमाने की संस्थाओं के तर्क से दबाना है। राष्ट्रवाद, अभियांत्रिकी, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी), कार्पोरेट ब्रांड आदि अनेकों बनावटी ईश्वरों को हमारे ऊपर बड़ी चालाकी से थोप दिया गया है। विविध समुदायों का सामाजिक तौर पर यांत्रिकीकरण और पुनर्रूपांतरण किया गया है (या तो भारी तबाही मचाने वाले शस्त्रों के जरिये या विशाल मात्रा में प्रशिक्षण के जरिये विध्वंस मचाकर) ताकि वे इन संस्थात्मक श्रेणियों तथा मानदंडों के अनुकूल (फिट) हो जाएं।

इतिहास ने हमें दिखलाया है कि मानवता के विरुद्ध जघन्यतम अपराध वहाँ हुए हैं जहाँ लोग संस्थाओं द्वारा रचित अमूर्तताओं के प्रति आज्ञाकारी व बिखरे गुलाम बन गए हों। हमारे रोजमर्रा के जीवन में अमानवीकरण के अनेकों उदाहरण दिखाई देते हैं: *सेना का जवान* जब यह कहता है कि वह तो केवल आदेश का पालन कर रहा था जब उसने निरपराध मणिपुरी पर गोली चलाई ... *भारतीय गृहिणी* जो प्रतिदिन सब्ज़ी वाले से प्लास्टिक की थैली लेती है और कहती है कि पड़ोस को स्वच्छ रखना और धरती माता की साज-संभाल करना उसका काम नहीं है ... *कक्षा का मानीटर* जो अपने हमउम्रों को प्रतिदिन शिक्षक द्वारा अपमानित होते व पिटते देखता है क्योंकि उन्होंने होमवर्क पूरा नहीं किया था ... *वह लडक़ी* जो कीमती ब्रांडेड वस्त्र इसलिये खरीदती है ताकि अधिक सुंदर दिखे और लोकप्रिय हो जाए। इस सब के सार में संस्थानीकरण है जो हमारे अंदर की पूरी आवाज को और हमारे निजी व सामूहिक ''सत्य के साथ प्रयोग'' को चालाकी से दबा देता है।

आज के माई-बाप रिलायंस, स्टार टी.वी और विश्व बैंक अंतर्सम्बन्ध जानता है कि हमारे लिये श्रेष्ठ क्या है। गोली भी वे ही दागते हैं पर हमें स्वतंत्रता और विकल्प की

मरीचिका देते हैं – चाहे वह टी.वी चैनल हो, मोबाइल फोन कंपनियाँ हो, आलू चिप्स हो या गौरेपन की क्रीम ही क्यों न हो। हमने रेडीमेड बाज़ार के प्रभुओं से भुतहा सौदा कर लिया है, जिसमें 'सुविधा' के बदले में हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रसंस्करित व डिब्बे में बंद करके दिया जाता है। लेकिन वे हमसे हमारे उस विकल्प को छीन लेते हैं जो हमारे जीवन के लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है – ताज़ी हवा, विष-विहीन भोजन, प्रकृति के उपहारों तक पहुँच, रिश्तों की देखभाल करने हेतु समय, अपने आध्यात्मिक विकास पर अपना नियंत्रण और आंतरिक शांति। वे हमें पेशेवर सेनाओं, नाभिकीय बिजली घरों, कचरा भट्टियों, वित्तीय ऋणग्रस्तता, जीन संबंधी चालाकी आदि के पेशेवराना जगत को 'ना' कहने की स्वतंत्रता तक नहीं देते। हमसे कहा जाता है कि हम इन ''आवश्यक बुराइयों'' को अपनाए यदि हम भारत को एक दिन महाशक्ति बनाने का सपना देखते हैं।

गेट्टो की आलोचना हमें आमंत्रित करती है कि हम उन अधिक बुनियादी सवालों से खुद को जोड़ें कि अच्छा जीवन कैसे बनता है: ईमानदार जीविकोपार्जन क्या है? स्वस्थ लोकतंत्र, अर्थव्यवस्था और समाज को कौन सी चीज़ बनाती है। हम समस्त जीव जगत के साथ समन्वय पूर्वक किस तरह रह सकते हैं? गांधी ने इन प्रश्नों को *हिंद स्वराज* में 100 वर्ष से भी पहले उठाया था और उन्हें भारत की आध्यात्मिक धाराओं में बारंबार रेखांकित भी किया गया है। फिर भी चूहा-दौड़ शिक्षा पद्धति के पास इन सवालों के लिये समय नहीं है।

दुर्भाग्य से भारत में हमने 60 वर्ष स्वयं पर लेबल लगाते हुए व्यतीत किये हैं। भारत 'पिछड़ा' है, 'विकासशील' और 'गरीब' है। भारत 'निरक्षर' और 'अशिक्षित' है। और हाल ही में एक नया लेबल ''सीखने वालों की प्रथम पीढ़ी'' (फर्स्ट जनरेशन लर्नर्स) का आया है। यह सर्वाधिक अपमानजनक शब्द है जो मैंने सुना है क्योंकि इसका निहितार्थ यह हुआ कि हमारे पूर्वजों ने कुछ भी नहीं सीखा था, क्योंकि उनके गाँव में कोई स्कूल नहीं था। ये सब आयातित लेबल हैं, जैसे अंग्रेजी ब्रांड्स, जिसके पीछे शिक्षित मध्यवर्ग पागल है। वे हमें सभ्यता के मानसिक ढाँचे में डालकर गुलाम बनाते हैं जो हमें सही ढंग से सोचने से रोकता है, अपनी खुद की खूबियों का सही मूल्यांकन नहीं करने देता और अपनी शिक्षा, विकास तथा वृद्धि को पुनर्परिभाषित करने से रोकता है – *होमो इकोनामिकस* से आगे नहीं जाने देता।

मैं तो कहना चाहूँगा कि भारत भाग्यशाली है। हम संस्थानीकृत शिक्षा और कारखाना स्कूल प्रणाली में गरीब हैं (संयुक्त राष्ट्र चार्ट के अनुसार) और *शिक्षा में धनवान* हैं। जिस संसार की ओर गेट्टो इंगित कर रहे हैं – संयुक्त परिवार का, स्वस्थ समुदायों का, अर्थपूर्ण प्रशिक्षण व प्रमाणिक परियोजनाओं का, स्थानीय भाषाओं तथा सामुदायिक मीडिया का, प्रकृति में और नि:शब्दता में समय का – यही सब असली शिक्षा है। हमारे भारत में अभी भी यह बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। वस्तुत: *शिक्षा* ही भारत को डूबने से बचाए हुए है।

गेट्टो अमरीकियों की सहायता करने की कोशिश में हैं कि वे अपनी कल्पनाओं का उपनिवेशीकरण न करें और इस बात की खोज करें कि सुख के लिये वास्तव में क्या महत्त्वपूर्ण है। विशाल भारतीय मध्यवर्ग का उपनिवेशीकरण करने के लिये हमें उनसे कुछ संकेत मिल सकते हैं। *डम्बिंग अस डाउन* हमें चार महत्त्वपूर्ण बातों की याद दिलाती है जो किसी भी गंभीर विश्लेषण का हिस्सा होनी चाहिये और भारत में शिक्षा पर वाद-विवाद के लिये:

1. *शिक्षा को अर्थशास्त्र और राजनीति के बड़े खेल के संदर्भ में देखा जाना चाहिये* – राज्य और वैश्विक बाज़ार गहराई से आपस में संबद्ध हैं। कहानी लार्ड मेकाले से कहीं अधिक बड़ी है। इंडिया इन्कार्पोरेटेड, वैश्विक अर्थव्यवस्था के बड़ों के साथ खेलना चाहता है और वह 9% वृद्धि दर को किसी भी कीमत पर लाने को वचनबद्ध है। इसके लिये तीन बातों की आवश्यकता है : बेलगाम खनन, लोक संसाधनों का बेलगाम निजीकरण और बेलगाम उपभोक्तावाद। इस खेल में, स्कूल पद्धति दो भूमिकाओं का निर्वहन कर रही है:

(i) किसी भी प्रतिरोध को दबाने के लिये आज्ञाकारी खंडित नागरिकों का उत्पादन करना जिनका स्थान के विवेक से कोई रिश्ता न हो, और

(ii) प्रचंड उपभोक्ताओं के रूप में बच्चों को तैयार करना। शिक्षा को चाहिये कि वह हमें वह भ्रांति बेचे कि अधिक से अधिक वस्तुओं का होना ही हमें वास्तविक सुख दे सकता है। गेट्टो उस सरल सूत्र की पोल खोलते हैं जो हमें सुख देगा और जो हमें पढ़ाया जाता

है : अच्छी शिक्षा = अच्छी नौकरियाँ = अच्छी चीज़ें = अच्छा सुख।

एक भड़काऊ फिल्म है, *कंज़्यूमिंग किड्स,* जो बड़े सटीक ढंग से बतलाती है कि विज्ञापनों और विज्ञापन एजेंसियों के लिये आज मुख्य लक्ष्य बच्चे हैं। लगातार शिकायत करना, ''नैग फैक्टर'' में विशेषज्ञ बच्चें ही अंतत: खरीदी और आर्थिक वृद्धि के चालक हैं। स्कूल अच्छे लक्ष्य हैं क्योंकि बच्चे ही बाज़ार की शब्दावली में ''कैप्टिव आडिएंस'' (कैदी श्रोता) होते हैं। हाल ही मैंने जयपुर के एक स्कूल में देखा जहाँ बच्चों को अडीडास ब्रांड का गणवेश पहनना पड़ता है।

अत: यह मात्र संयोग नहीं है कि संपूर्ण भारत में हम शिक्षा प्रणाली पर कार्पोरेट घरानों के निरंतर बढ़ते प्रभाव को देख सकते हैं – कार्पोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी (सीएसआर) के बहाने से। ये अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, पीरामल फाउंडेशन, द टाटा फाउंडेशन, आईसीआईसीआई बैंक, हेवलेट पेकर्ड, नोकिया, कोकाकोला, मैकडोनाल्ड्स, माइक्रोसाफ्ट तक व्याप्त हैं। इनके दर्शन का सार तत्व यही है कि ये सारे फाउंडेशन सरकार की 9% वृद्धि से जुड़े हैं और शिक्षा प्रणाली का उपयोग वे अपनी जनता से संबंध (पीआर) रणनीति (अपने कार्पोरेट कुकृत्यों को ढंकने हेतु) के भाग के रूप में और अपने बाज़ार की अभिवृद्धि हेतु कर रहे हैं।

विश्व बैंक, जो भारतीय योजना आयोग को सर्वाधिक प्रभावित करता है, की विषय-सूची – सभी के लिये शिक्षा और मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स, दरअसल न लाभकारी ग्रामीण बाज़ारों (भूखे, शिक्षित, अंग्रेजी बोलने वाले हाइपर उपभोक्ताओं) के साथ के लिये है न कि गरीबी मिटाने के लिये। वे अभी भी हमें मूर्ख बनाने का प्रयत्न करते हैं कि ट्रिकल-डाउन अर्थ व्यवस्था वास्तव में चल सकती है। किंतु यथार्थ कुछ और ही बतलाता है: बीस वर्ष की मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप आज भारत के 100 सर्वाधिक धनी लोगों की अस्तियाँ देश के जीडीपी की कुल एक चौथाई के बराबर है जबकि 80% से अधिक लोग 20 रू प्रतिदिन से भी कम पर गुजारा करते हैं। इस परिदृश्य में महान भारतीय मध्यवर्ग कमजोर धरातल पर खड़ा है। स्कूल पद्धति ऐसी स्थिति भी निर्मित करती है कि हम ''टिना – देयर इज़ नो अल्टरनेटिव'' पर विश्वास करें – जो आत्मघाती राजनैतिक-आर्थिक मॉडल है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय

बड़े ही भद्दे तरीके से हमें विश्वास दिलाने का यत्न करता रहता है कि मनुष्य जन्म से ही 'संसाधन' हैं जो मशीन की खुराक है। भारत में अधिकार आधारित सामाजिक आंदोलनों की कमजोरी यह है कि वे सब अभी भी इस असीमित वृद्धि की शिक्षा-आर्थिक रूपावलि के अंदर ही हैं, मानव वस्तु है और अभियांत्रिकी स्वप्नवाद। हम जो 99% हैं को 'प्रगति' की अन्य संभाव्यताओं की कल्पना करने की इज़ाजत नहीं है – केवल इस अधिकार को पाने के लिये लड़ना।

एक तरीका जो शिक्षा प्रणाली द्वारा हमें मूर्ख बने रहने के लिये खास तौर पर आजमाया जाता है, वह है पारंपरिक समुदायों की विवेकयुक्त आवाजों को यह कह कर खामोश कर देना कि वे ''अशिक्षित'' थे। यदि इन तिरस्कृत स्वरों को सुना जाए, जैसे मेरी दादी के, तो अलग प्रकार की प्राथमिकताएं और संबंध, मानव के अस्तित्व और प्रेरणा का एक भिन्न अर्थ और भिन्न भारत की प्रेरणा का सृजन हो सकता है। वे ''मानव संसााधन'' भले न हों पर वे निर्विवाद रूप से विवेक, प्रेम तथा कल्पना के स्रोत हैं।

हमने उस मिथक का भी आंतरिकीकरण कर दिया है कि जिनकी अधिक स्कूलिंग हुई है वे अधिक 'शिक्षित' हैं बनिस्बत उनके जिनकी स्कूलिंग कम हुई हो। इस ज्ञान क्रमानुक्रम में, अधिक समय तक स्कूलों में रहे लोगों को, अपने कम समय तक स्कूलों में रहे देशवासियों को लूटने, दुर्व्यव्यवहार करने और भेदभाव करने का नैतिक अधिकार मिल गया है। यह अमानवीकरण करने वाला तर्क समूचे भारत में सुना जा सकता है, एनजीओ से लेकर शासकीय अधिकारियों और कार्पोरेट नेताओं तक, कि किस प्रकार वे जन-जातीय लोगों और जनजातियों की भूमि तथा नगरीय बस्तियों को समझते हैं और उनके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। यह गोरे लोगों के आखिरी बोझ तर्क (सबकी स्कूलिंग कर दो) का ही विस्तार जैसा प्रतीत होता है।

2. *हमारे लिये स्कूली शिक्षा के गुप्त पाठ्यक्रम की ओर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।* पाठ्यक्रम की अंतर्निहित संरचना उसकी विषयवस्तु से अधिक तेज आवाज़ में बोलती है। जो नही कहा जाता है वह कहे गए से अधिक महत्त्व का है। उदाहरण के लिये, गुप्त पाठ्यक्रम हमें पढ़ाता है कि पाठ्य पुस्तकें और परीक्षाएं उत्तीर्ण करना शिक्षा का अंतिम लक्ष्य और पढ़ने का उद्देश्य है। हमें इस तरह तैयार किया जाता है कि हम विश्वास

करें कि स्कूल के बाहर बिताया गया हमारा प्रत्येक पल, खुद होकर अपने मित्रों व परिजनों के साथ सीखना तथा अनुभव करना, अनुपयोगी है ''समय की पूर्ण बर्बादी है'', क्योंकि हमारी परीक्षा उस सबके लिये नहीं होगी और उसका प्रमाणपत्र नहीं मिलेगा। वे जो अपने हाथों का उपयोग करते हैं और ''शारीरिक श्रम'' करते हैं को तुच्छ समझा जाता है और उनसे दूरी बनाई जाती है। अमेरिका में बच्चे *नेचर डेफिसिट डिसआर्डर* (एनडीडी) से पीड़ित होने लगे हैं और इतनी देर तक पढ़ने के कारण मोटे हो रहे हैं। हमें इस प्रकार से भी ढाला जाता है कि बाहरी ईनाम व सज़ा हमारे सीखने को संचालित करे – हमारी खुद की आंतरिक जिज्ञासा, प्रेरणा तथा स्थानीय संदर्भ नहीं।

मुझे याद आ रही है अपने छोटे दोस्त सुमित की और जो उसके साथ घटा। सुमित ने शिक्षान्तर के निकट के दीवाली गाँव से आना शुरू किया जब वह कक्षा 5 वीं में था। उसके पिता की एक छोटी सी ऑटो पार्ट्स की दूकान थी। मेरा जितने बच्चों से साबका पड़ा है उनमें सुमित सर्वाधिक जिज्ञासु, मित्रवत एवं सक्रिय था। वह प्रतिदिन स्कूल के बाद 3 बजे आता था। वह कुछ पारंपरिक वैद्यों द्वारा आत्म-उपचार तथा जड़ी-बूटियों के पौधों के प्रति आकर्षित हुआ। उसने अपने घर की छत पर औषधीय पौधों का पूरा बगीचा बिना किसी की सहायता के अकेले ही बना डाला – मात्र 11 वर्ष का लड़का। उसकी नाटक, लेखन और जीव-संचारण (एनीमेशन) में भी रुचि थी। वह अपने पिता की दूकान में भी मदद करता था। मुझे याद है वह मुझसे शिक्षान्तर के विषय में प्रश्न किया करता था और जहाँ कहीं भी उसे कुछ छूटता सा प्रतीत होता; हमारे मूल्यों व उपायों में कोई रिक्तता की अनुभूति होती, तो वह उनकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता था। जब वह कक्षा 7 वीं में पहुँचा, तो एकाएक सब कुछ रुक गया। सुमित दैनिक होमवर्क, साप्ताहिक टेस्ट, ट्यूशन क्लासों से दब कर रह गया और कुछ वर्षों में मैंने देखा कि सुमित की तेजस्वितापूर्ण ऊर्जा धीरे-धीरे समाप्त हो गई। उसके पास वह सब करने के लिये समय ही नहीं रहा जो उसे पसंद था। हाल में सुमित ने 12 वीं पास की है। वह अपने भविष्य को सोच कर भयभीत है। वह अपना आत्मविश्वास खो चुका है और खुद ही कुछ सीखने की योग्यता भी उसमें नहीं रही। वह अपने पिता के छोटे व्यापार से लज्जित है। यह केवल सुमित का ही मामला नहीं है बल्कि देश भर के लाखों बच्चों का है। आज जो अपनी वास्तविक आकांक्षा को ढूंढ पाते और उन्हें विकसित कर पाते हैं, वे

व्यवस्था के कारण नहीं अपितु व्यवस्था के बावजूद ऐसा कर पाते हैं।

3. *स्व-संरचित शिक्षा ही असली चीज़ है।* एकलव्य की प्राचीन कथा स्व-संरचित शिक्षा की ताकत का ज्वलंत उदाहरण है। वह बतलाती है कि हममें से प्रत्येक में वह क्षमता है कि हम बिना औपचारिक पढ़ाई और नियंत्रण के सीख सकते हैं और श्रेष्ठता प्राप्त कर सकते हैं। अन्य कई अर्वाचीन कहानियों की भाँति, यह हमें प्रकृति से जुड़ कर सीखने की प्रेरणा देती है। दुर्भाग्य से, आधुनिक स्कूल तथा एनजीओ ने एकलव्य को नायक से बेचारा में बदल दिया है। द्रोणाचार्य का *गुरु-दक्षिणा* के रूप में अंगूठा मांगना हमें बतलाता है कि केंद्रीकृत सत्ता अपनी शक्ति और वैधता को बचाए रखने के लिये किस हद तक जा सकती है।

आज भारत में प्रगतिवादी शिक्षाविद् शिशु-केंद्रित सीख की बात करता है। दुर्भाग्य से, शिशु-केंद्रित भाषाशास्त्र में भी बच्चे को वस्तु ही समझा जाता है जिसे चालाकी से एक सांचे में ढाल दिया जाए, बजाय इसके कि कोई एजेंसी हो जो उसे जगत में अपना अर्थ स्वयं तलाशने में सहायता करे। मेरे मित्र दयालचंद सोनी ने एक बड़ी सुंदर मेवाड़ी कहावत सुनाई थी *''वास्तविक लोकतंत्र अपने शासको को चुनने से नहीं आता, बल्कि वास्तविक लोकतंत्र अपने शिक्षकों को चुनने की योग्यता से आता है।''* अत: शिशु-केंद्रित शिक्षा के बजाय हम इस बात का पता लगाने का यत्न करें कि *शिशु-नेतृत्व सीख* के अधिक अवसर कैसे सृजित किये जा सकते हैं, जहाँ सभी उम्र के बच्चों को छोड़ दिया जाए और वे स्व-संरचित और स्व-संगठित होकर अपनी शिक्षा प्रक्रियाएं, नियम तथा स्थान बनाएं।

विगत दो वर्षों से मैं एक प्रयोग से संबद्ध रहा हूँ जिसका नाम है स्वराज विश्वविद्यालय (www.swarajuniversity.org) जिसमें प्रत्येक *खोजी (प्रशिक्षु)* को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि वह अपना अनुपम और स्वयंकृत शिक्षा पाठ्यक्रम विकसित करें। हमने सीखा है कि स्व-संरचित शिक्षा के लिये दो तत्त्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मेरी मान्यता है कि यदि भारत में सो करोड़ लोग हैं तो हमारे लिये सो करोड़ शिक्षा प्रणालियों के लिहाज से सोचने की आवश्यकता है। *1990 में शिक्षकों को दिये गए एक व्याख्यान में, गेट्टो ने कहा, ''शिक्षित होने का कोई सही तरीका नहीं है,*

उतने तरीके हैं जितने उंगलियों के निशान होते हैं।'' हमें खुद को चुनौती देनी चाहिये कि अपने प्रादर्श व प्रक्रियाएं (मानदंड/माडल) खुद विकसित करें जो विविधता के सहायक हों, बजाए उन्हें दबाने के।

दूसरा अहम् तत्व है प्रमाणिकता। चूंकि हम मनुष्य हैं, इसलिये प्रमाणिकता से संचालित होते हैं, अर्थात, ऐसे असली काम करने की इच्छा जो विश्व के, हमारे और अन्यों के लिये कोई मायने रखते हों। हमारी गरिमा की मूल भावनाएं, हमारी उस योग्यता से जुड़ी हुई है कि हम सोद्देश्य और अर्थपूर्ण ढंग से कार्य करें। स्वराज विश्वविद्यालय में, हम *खोजियों* को प्रोत्साहित करते रहे हैं कि वे वास्तविक परियोजनाओं पर उन प्रश्नों व मुद्दों को लेकर अपना समय खपाएं, जिनकी उन्हें चिंता हो। मैंने देखा है कि हम सबमें अपार ऊर्जा होती है जब हम प्रेरित हों। हमें किसी गोल्ड स्टार, धमकियों या दंड की आवश्यकता नहीं है। प्रमाणिकता हमें आशय युक्त, गहन अर्थ, आंतरिक प्रेरणाएं, आत्मानुशासन और असली फीडबैक देती है।

दो बातों का स्पष्टीकरण होना ज़रूरी है। प्रथम, स्व-संरचित शिक्षा का मतलब एकांत में सीखना या समाज-विरोधी होना नहीं है। वस्तुत: वह इसका ठीक विपरीत है। इसका आह्वान है गहन सह-शिक्षा और सह-सृजन, पूरे जीवन के साथ। द्वितीय, स्व-संरचित शिक्षा विनम्रता की भावना से चलित होती है जैसा कि इस कथन में परिलक्षित होता है, ''जितना अधिक मैं जान पाता हूँ, उतना अधिक लगता है कि मैं कितना कम जानता हूँ।''

4. *आधुनिक संस्थात्मक शिक्षा का विकल्प स्वस्थ स्थानीय समुदाय है।* स्व. संत-कार्यकर्ता विनोबा भावे ने एक बार कहा था कि *तानाशाही* का विकल्प *नाताशाही* (सादृश्यता समूह और सामुदायिक संबंध) है। गेट्टो हमें प्रेरित करते हैं कि हम अपनी ऊर्जा और प्रयासों का उपयोग स्वस्थ संयुक्त परिवारों, सुरक्षित स्थान आधारित एवं टिकाऊ शिक्षा के पुनर्निमाण में करें। इस प्रकार की सोच प्रसिद्ध अफ्रीकी कहावत का अनुसरण करती है ''कि एक बच्चे को बड़ा करने के लिये पूरे गाँव की ज़रूरत पड़ती है।'' भारत के शहरीकरण में, समुदाय की पारंपरिक धारणा तेजी से विघटित हो रही है। गेट्टो हम सब से सवाल करते हैं कि हम इस बेचैन करने वाले प्रश्न पर गंभीरता से

विचार करें, ''मेरा समुदाय क्या है?''

पिछले अनेक वर्षों से मेरा उदयपुर में बतौर लर्निंग सिटी प्रक्रिया का कार्य था, नगरीय क्षेत्र में समुदाय और सामान्य संसाधनों का पुनरोत्थान करना। हमने सीखा कि हमारी स्थानीय भाषाएं, भूमि, शारीरिक श्रम और मैत्रीपूर्ण संबंध वास्तविक समुदाय के पुनर्निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण होते हैं। स्थान की अनुभूति (सायबर स्पेस से भी आगे) आवश्यक है और प्राय: महत्त्वपूर्ण सीखने वाले सवाल उपस्थित करती है कि हम अपने भोजन, ऊर्जा, जल, पशु, कचरा, यहाँ तक कि मल से अपने संबंधों को किस तरह देखते हैं?

उपहार संस्कृति एक और शक्तिशाली विचार है जिसकी खोज हम समुदाय के संदर्भ में करते रहे हैं। पारंपरिक समुदायों में, सबसे धनी लोग वे नहीं होते जो सबसे अधिक संचय करते हैं, बल्कि वे जो सबसे अधिक बांटते हैं। हमारे पास बहुत खूबसूरत उपहार है, जो बाहर आने की प्रतीक्षा में हैं ताकि उन्हें हम एक दूसरे के साथ बांटे। अनेक प्रक्रियाओं और रस्मों को आरंभ करने की आवश्यकता है जिससे कि विश्वास, पारस्परिक सहायता, करूणा, सहभागिता और किसी से जुड़ाव को पुनर्जीवित किया जा सके।

स्वस्थ समुदाय में हमारे बच्चों (और बतौर वयस्क हमें) की गुरुओं की एक पूरी जमात तक पहुँच होगी या वे प्रेरणा के स्रोत होंगे जिनमें कृषक, कलाकार, उपचारक, दादी-नानी, उद्यमी, कार्यकर्ता, पशु आदि सभी सम्मिलीत होंगे – केवल स्कूल-शिक्षक नहीं। इसका अर्थ है कि 'समाजीकरण' के अनुभव कहीं ज्यादा शानदार होंगे, उसकी तुलना में जो स्कूल में होते है। वर्तमान में शिक्षक की संकीर्ण परिभाषा के कारण, स्कूलों ने ''अच्छे'' शिक्षकों की कृत्रिम कमी उत्पन्न कर दी है। समुदाय में रहने से हमारी सोच बदलती है जहाँ सीखने के साधन बहुतायत से सभी के लिये उपलब्ध हैं।

हमने शहर के इर्द-गिर्द जगहें बनाने का प्रयत्न किया है जो विविध पीढ़ियों के बीच और विविध समुदायों के बीच संवाद तथा रचनात्मक गतिविधियों के संवर्धन के काम आती हैं। बुद्धि का पोषण तभी हो सकता है जब विविध आयु वर्ग के लोग गतिशीलता के साथ आपस में व्यवहार करें, संकुचित एक ही आयु के समूहों से ऊपर उठ कर। ऐसे स्थलों में आहिस्ता से प्रश्न करना संभव होता है और कार्य, मनोरंजन, शिक्षा, परिवार,

व्यायाम आदि का कठोर टुकड़ों में विभाजन से पार पाना मुमकिन होता है जो आधुनिक औद्योगिक शहरी जीवन के लक्षण हैं।

भारत में संयुक्त परिवारों और पारंपरिक समुदायों को नष्ट करने का सक्रिय अभियान चलाया गया है। कई कार्यकर्ता इसे कठोर पितृसत्ता, धार्मिक कट्टरता और जाति दमन के साधन के रूप में देखते हैं। उनका भय कभी-कभी सच साबित भी होता है। किंतु बजाय शिशु को नहाने के पानी से बाहर फेंकने के, मैं कहूँगा कि हम इन सामाजिक बुराइयों से टक्कर लें – गहन संवाद, प्रमाणिकता से और खुले हृदय से सुनकर और सहयोग की भावना के साथ। केंद्रीकृत संस्थाओं द्वारा (जिनमें हृदय नहीं होता) समुदायों को दबाने से और अधिक हिंसा का मार्ग प्रशस्त होगा।

* * *

निष्कर्ष में, गेट्टो चुनौती देते हुए पूछते हैं कि उस ईशनिंदापूर्ण विचार के बारे में हम चिंतन करें कि जीवन में अधिक नहीं, कम स्कूलिंग होनी चाहिये। वे चाहते हैं कि हम उस कृत्रिम द्विभाजीकरण को तोड़ दें जो शिक्षा और जीवन के बीच रचा गया है। वे आह्वान करते हैं कि हम उस क्षति का ईमानदारी से आकलन करें जो स्कूलिंग ने हमारी स्थानीय सांस्कृतिक पद्धति को, हमारी स्थानीय परिवेशीय पद्धति को, हमारी स्थानीय अर्थ व्यवस्था को और बतौर आध्यात्मिक जीव हम सब को पहुँचाई है। भारत में ऐसी बहस का समय आ गया है।

सत्याग्रह की भावना के साथ, गेट्टो ने हाल ही में बार्टेलबी परियोजना आरंभ की है, शिक्षा प्रणाली से असहयोग करने का आंदोलन। वे सरकारी विराट मानकीकृत परीक्षा की पकड़ को तोड़ना चाहते हैं जिसने अभिभावकों, शिक्षकों और छात्रों को जकड़ रखा है। ऐसे तनाव उत्पन्न करने वाले टेस्ट सीखने की वास्तविक प्रक्रिया का अपहरण कर लेते हैं और शिक्षा तथा जीवन के बीच के अंतर को बढ़ाते हैं। वे जानते हैं कि जो सत्ता पर काबिज हैं, वे परीक्षा को समाप्त करने में सहायता नहीं करेंगे। अस्तु गेट्टो छात्रों को प्रोत्साहित कर रहे हैं कि वे शांतिपूर्वक मानकीकृत टेस्ट्स में भाग लेने से इनकार कर दें और उन्हें जो मानकीकृत टेस्ट्स दिये जाएं उनमें केवल ये शब्द लिख दें, ''मैं आपका टेस्ट न लेना पसन्द करूँगा।''

भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई), असली सीखने या स्वतंत्रता के बारे में नहीं है। बल्कि अनिवार्यता और मानकीकरण पर आग्रह के कारण यह वस्तुत: मानसिक दासता की संस्थाओं को और गहरा करने एवं कारखाना स्कूल व्यवस्था को सुदृढ़ करने वाला है। शिक्षा का अधिकार क़ानून, शिक्षा में अत्यावश्यक नवीन विचारों की हत्या कर देगा। बार्टेलबी परियोजना से प्रेरणा लेकर, हमें भी इस अधिनियम का विरोध करने के अहिंसक और रचनात्मक उपायों की खोज करनी चाहिये ताकि इसे पलटा जा सके। हम अनेक निकल भागने की प्रक्रियाएं रच सकते हैं जो हमें वास्तविक, विभिन्न प्रकार की शिक्षा, ज्ञान व विवेक को मूल्य देने की ओर अग्रसर करे जो कि क्लासरूम के बाहर मौजूद हैं। यह भी आवश्यक है कि हम उन लोगों के प्रति तरह-तरह से भेदभाव करने की रीतियों को चुनौती दें, जिनके पास उपलब्धियाँ (डिग्रियाँ) नहीं हैं, और नौकरियों की चयन प्रक्रिया से उपाधियों की अनिवार्यता को हटाएं। यदि हम ऐसा ईमानदारी से करें तो हम शीघ्र ही महसूस कर सकते हैं जो अनेक संस्कृतियाँ बहुत पहले से जानती हैं – कि दरअसल हम कक्षा-कक्ष के बाहर जितना सीखते हैं उतना क्लासरूम के अंदर बैठ कर नहीं सीखते। मुझे बड़ा सुखद आश्चर्य तब हुआ जब मैंने केरल के आठवीं कक्षा के छात्रों के एक समूह से पूछा कि क्या वे स्कूल के बगैर और संस्थात्मक नियंत्रण के बिना सीख सकते हैं, तो उन्होंने एक मत होकर उच्च स्वर में कहा ''हाँ'', शुक्र है स्व-संरचित सीखने की ललक अभी भी उनमें है।

एक अन्य बात जो मुझमें आशा का संचार करती है वह है बढ़ती हुई होमस्कूलिंग (घरू शिक्षा) या अनस्कूलिंग (स्कूल में प्रवेश नहीं लेना) आंदोलन जो पूरे भारत में चल रहा है। दस वर्ष पूर्व जब मेरी पत्नी विधि और मैंने अपनी पुत्री को अन-स्कूल करने (और बतौर अभिभावक हम दोनों को अन-स्कूल करने) का निर्णय लिया तब बहुत कम परिवार ऐसे थे जिन्होंने मेरे विचार का समर्थन किया। आज यह आंदोलन तेजी से बढ़ रहा है और काफी विविधता एवं प्रक्रियाओं से युक्त है। कुछ लोग तर्क करते हैं कि हम गैर जिम्मेदार हो रहे हैं ओर हमें सार्वजनिक स्कूलों को फिक्स करना चाहिये ताकि सभी बच्चों को लाभ मिल सके। किंतु मैं सोचता हूँ कि इस नए आंदोलन के द्वारा अनेक गहन और दूरगामी प्रश्न मानव शिक्षा पर उठाए जा रहे हैं। कई सामान्य सांस्कृतिक संसाधन, प्रशिक्षण

अवसर तथा सार्वजनिक स्थान (जो सभी बच्चों के लिये उपलब्ध हैं) रचे और बचाए जा रहे हैं। इस आंदोलन के केंद्र में अपने बच्चों के समय को पुन: प्राप्त करने का प्रयास और बच्चों के साथ हमारा समय है। मुझे एक चुटकुला याद आ रहा है जो पूछता है, ''उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास धन है। उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो *सचमुच* में धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास समय है। उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो *सचमुच, सचमुच में* धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास बच्चों के संग बिताने का समय है।'' यह आंदोलन, विराट भय की उस संस्कृति को सीधी चुनौती देता है जो हमें इस विश्वास से लकवाग्रस्त कर दे रहा है कि हम उस चूहा-दौड़ में पिछड़ जाएंगे यदि हमारे बच्चे कारखाना शिक्षा में प्रतिस्पर्धा नहीं करेंगे।

मेरी हार्दिक बधाइयाँ और शुभकामनाएं बनियन ट्री को जो इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुस्तक को भारतीय शैक्षणिक परिदृश्य पर ला रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो भी इसे पढ़ेंगे वे अपने मासूम बच्चों को कारखाना स्कूलों में जाने के लिये उन पर दबाव डालने, घूस देने या ज़बर्दस्ती करने से पहले *दो दफा* (बल्कि *तीन दफा*) सोचेंगे।

शिक्षान्तर आंदोलन,
उदयपुर, राजस्थान
ई-मेल : manish@swaraj.org
वेबसाइट : www.swaraj.org/shikshantar

प्रस्तावना

थामस मूर

मेरे पिता एक जन्मजात शिक्षक हैं। वे उन लोगों मे से हैं जो दूर से ही सीखने की ललक रखने वाले को पहचान लेते हैं और सक्रिय हो जाते हैं। जब मैं अपने चालीस के पेटे में था, तब उन्होंने मुझे स्थानीय बालिंग एली में बालिंग करना सिखाया था। अपने निराले अंदाज में उन्होंने कहा, ''गेंद उठाओ और उसे उन पिनों के केन्द्र की तरफ तेज़ी से लुढ़काओ।'' बस, वे जानते थे कि मैं इस अपेक्षाकृत सरल कौशल को अपने आप सीख लूँगा। वे उस पर विश्वास करते थे जिसे जॉन गेट्टो ''स्व-शिक्षा'' कहते हैं।

मुझमें भी अपने ही पिता का खून है। मैं गत चालीस वर्षों से शिक्षक हूँ और मैंने अपनी इस भूमिका को सदैव पसंद किया है। मैंने इसे उनकी शागिर्दगी में सीखा। अठासी वर्ष की आयु में व्यावसायिक स्कूल में नलसाजी सिखाते हुए सेवानिवृत्त होने के बाद, स्थानीय स्कूलों में उन्होंने उन वयस्कों को प्रशिक्षण दिया जो कम्प्यूटर का किस प्रकार उपयोग किया जाता है, सीखने के इच्छुक थे। मुझे विश्वास है कि अस्सी वर्ष की आयु में मुझमें भी अभी तक वही उत्साह बरकरार है।

किंतु मेरे पिताजी को उस ठस दिमाग नौकरशाही से भी दो-चार होना पड़ा जिसकी जॉन गेट्टो इतने विस्फोटक ढंग से आलोचना करते हैं। एक दफा उन्होंने एक स्थानीय

स्कूल से सम्पर्क किया और कहा कि बतौर भूतपूर्व नलसाजी प्रशिक्षक वे बच्चों को बतलाना चाहेंगे कि उनका पेयजल कहाँ से आता है, किस प्रकार उसे साफ किया जाता है, और उपयोग के बाद वह कहाँ जाता है। स्कूल ने उन्हें इस प्रस्ताव के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि उनके दैनंदिनी कार्यक्रम में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है।

मेरा ऐसा मानना है कि स्कूल का अनेक स्तरों पर नुकसान हुआ। मेरे पिता जानते थे कि बच्चों से कैसे बात की जाती है और बच्चों को थोड़ी-बहुत व्यवहारिक सीख की भी आवश्यकता होती है। कौन जानता है कि उन बच्चों को उस शिक्षक से रू-ब-रू होने से कितना लाभ होता जो अपने काम का विशेषज्ञ है और जो बच्चों से और अपने काम से प्यार भी करता हो, और वही जब कक्षा में सिखाता तो वह समुदाय के हित में भी होता। *जॉन गेट्टो एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा उठाते हैं कि वृद्धों और बच्चों का आपस में मिलना समुदाय की ज़रूरत है।*

शिक्षक के रूप में मैंने कुछ काम किये हैं किंतु वे जॉन गेट्टो द्वारा किये गए गहन शैक्षणिक प्रयासों की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। पियानो सिखाते समय मैंने बच्चों को प्रोत्साहित किया कि वे अपनी संगीत रचना स्वयं बनाएं, उपकरण के सिरों पर हल्के से आघात करते हुए थपथपाऐ और अपनी मर्जी से प्रभाव पैदा करें। सबसे अधिक आनंददायक शिक्षण जो मैंने किया वह उस कक्षा में हुआ जहाँ मोटा गलीचा था पर कुर्सियाँ नहीं थी। मेरे तीस छात्रों के पास न तो कोई पाठ्यपुस्तकें थी, न पाठ्यक्रम और न ही कोई उद्देश्य। मैं किसी भी दिन जो भी दिखाई देता उसी से शुरू हो जाता। मैंने इतना कूछ सीखते हुए अपने लिये और अपने छात्रों के लिये अन्यत्र कहीं नहीं देखा।

एक चिकित्सक ने एक बार मुझसे कहा था कि रोग तब ठीक होता है जब रोगी दूसरी ओर देखती है। मेरे लिए सीखना तब होता है जब शिक्षक के मन में अन्य बातें हों। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की सीख को न सिर्फ आकार दिया जा सकता है बल्कि सिखाया भी जा सकता है, किंतु स्कूलों में नहीं जैसा कि हम उन्हें जानते हैं, बल्कि जैसा जॉन गेट्टो का कहना है कि जब एक माँ और बेटी साथ में मिलने के लिये पुलिस अधीक्षक के पास जाए या जब बच्चे प्रकाशक के पास जाकर अखबार बनने की प्रक्रिया को देखें और स्वयं करके सीखें। *समय* को अनेक टुकड़ो में संस्थान की सुविधा के

अनुसार बाँटकर या पाठ को उस संसार से ही पृथक करके जिसमें छात्र रहते हैं, वे कभी कुछ सीख नहीं पाएंगे। हम कभी भी नहीं सिख सकते, जीवन को अनेक हिस्सों में बाँट कर जिनका आपस में कोई संबंध ही *न हो* ।

जॉन गेट्टो से मेरी मुलाकात दस वर्ष पूर्व शिक्षकों की एक छोटी सी गोष्ठी में हुई थी। दिन भर की गतिविधियों के दौरान हम लोगों से कहा गया कि हम किसी ऐसी वस्तु पर अपनी प्रस्तुति दें, जो हमारे लिये कोई मायने रखती हो। मुझे याद है कि जॉन ने एक पुराना ब्रीफकेस निकाला और जहाँ तक मुझे याद है उन्होंने कहा था कि वह उनके पिता का है। उस पर बहुत खूबसूरत हरे रंग की काई सी जमी थी जो इस बात का प्रमाण था कि वर्षों से उसका उपयोग हो रहा है। जब मैंने जॉन को ब्रिफकेस उठाते हुए देखा तो हैरान रह गया। यह तो बिल्कुल मेरे पिता के जैसा था जो ऐसी वस्तुओं के मूल्य को समझते थे और उस भावना को भी महसूस करते थे जो पिता से पुत्र से पौत्र तक अक्षुण्ण रहती है। इस प्रकार की भावना से पता चलता है कि व्यक्ति का हृदय कितना संवेदनशील है। मेरे पिता कभी जॉन गेट्टो की तरह अंग्रेजी तो नहीं पढ़ा सके, किंतु दोनों का चीज़ों को देखने का नज़रिया एक जैसा था जिसे कभी भी मूल्यों में नहीं आँका जा सकता और जिसके गुम हो जाने का खतरा हमेशा बना रहता है।

जॉन के लेखों में जो बात मुझे सबसे अधिक पसंद है वह है मर्यादाहीन घृणा और सर्वव्यापी शांत बुद्धि का सुंदर समन्वय, जिस बेफिक्री से वे स्कूल को कारागृह, जेल, कालकोठरी कहते हैं; स्कूल को चमगादड़ो का अंतर्जाल कहते हैं जिसके हृदय को जलते हुए भाले से बिंध देना चाहिये; स्कूल की घंटियाँ जैसे हर बच्चे को एक जैसा होने का टीका (वेक्सीनेशन) लगाती हों। बतौर पाठक आप जान जाते हैं कि जॉन कहाँ खड़े हुए हैं।

जॉन का कहना सही है। स्कूलों की मरम्मत करने से या उन्हें बेहतर बनाने से कुछ नहीं होगा। हमें ज़मीन से आंरभ करना होगा और शिक्षा क्या है उस पर पुनर्विचार करना होगा। मैं यह देखना चाहूँगा कि आत्मा को शिक्षित किया जा रहा है, केवल मन को नहीं। इसका परिणाम यह होगा कि व्यक्ति इस जीवन में सृजनशील होगा, अच्छी दोस्ती करेगा, उस जगह में रहेगा जिससे उसे प्यार है और समुदाय को अपना योगदान

देगा। लोग कहते है कि educate का अर्थ है, व्यक्ति की क्षमता को बाहर निकालना। किंतु मैं बीच के duc भाग को पसंद करता हूँ। शिक्षित होने का मतलब है duke, नेता, ऐसा इन्सान बनना है जो हर दृष्टिकोण से ऊँचा और रंगीन हो, जिसकी उपस्थिति और चरित्र अलग दिखाई दे।

मुझे प्रसन्नता है कि यह उत्साहवर्धक किताब पुन: प्रकाशित होने जा रही है। मैं इसकी प्रशंसा करता हूँ। मेरे मतानुसार इसे उच्च स्वर में हर जगह शिक्षा-शास्त्रियों और अभिभावकों को पढ़ कर सुनाया जाना चाहिये। यह हमसे पूछती है कि हम इस बात पर दौबारा विचार करें कि हम कैसे नैसर्गिक और स्पष्ट सोचें, लेकिन हमें मौलिक विचारों की आवश्यकता है। टूटते हुए स्कूल भवन हमे बतला रहे हैं कि वे कितना थक चुके हैं। स्कूलों में हो रही हिंसा चीख-चीख कर हमसे कह रही है कि अब हम वह सब बंद करें जिसे हम 'पढ़ाना' कहते हैं। अमेरिका में बातचीत के दयनीय स्तर को हमसे कहना चाहिए कि हमारे नागरिकों की कल्पनाओं का स्कूलों की हताश प्रभावहीनता द्वारा धोखा दिया जा रहा है। मैं जॉन गेट्टो का आभारी हूँ जिनमे तूफानी कल्पना-शक्ति से यह बतलाने का साहस है कि क्या गलत है और उसे कैसे दुरूस्त किया जाए, करने हेतु कुछ अच्छे विचार देने के लिये।

अक्टूबर 2001.

(थामस मूर *'केयर आफ द सोल'* : *एक गाइड फॉर कल्टिवेटिंग डेप्थ एंड सेक्रेडनेस इन एवरीडे लाइफ, सोल मेट्स: आनरींग द मिस्ट्रीज आफ लव एंड रिलेशनशिप,* तथा *द री-इन्चेंटमेंट आफ एवरीडे लाइफ* के लेखक हैं।)

परिचय

डेविड अल्बर्ट

उसका संपादक और प्रथम प्रकाशक होने के नाते मुझे अपनी ही पीठ थपथपाने की इच्छा होनी चाहिये थी कि जॉन टेलर गेट्टो की *''डम्बिंग अस डाउन''* उनकी पहली और सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक थी। पर दोनों ही बातें सत्य नहीं है। कई लोगों को इससे आश्चर्य होगा जो इसके पूर्व हरे और काले जिल्द वाले अवतार से या जॉन की दो नई पुस्तकों *''द अंडर ग्राउंड हिस्ट्री आफ अमेरिकन एजुकेशन''* (जो बेहद मोटी है) और *''ए डिफरेंट काइंड ऑफ टीचर''* (नीली जिल्द वाली) से ज़रूर परिचित हैं।

जॉन की पहली कृति मोनार्क नोट्स का सेट थी। आप लोगों में से कुछ को शायद याद होगा कि ये हाई स्कूल की अंग्रेजी कक्षा में, पढ़े बगैर काम आती थी! जो भी हो गेट्टो की पहली किताब 1975 में प्रकाशित हुई थी, जो केन केसी की *''वन फ्ल्यू ओवर द कुक्कूज़ नेस्ट''* की मोनार्क नोट्स गाईड थी।

एक मर्तबा जॉन ने, मेरी प्रति पर अपने हस्ताक्षर करते हुए, जो स्वयं मेरे हस्ताक्षर से थोड़े से ही अधिक पठनीय थे, लिखा था ''अंधकार में प्रकाश भर दो, विश्वास डिगने मत दो और उन हरामियों को उनकी औकात बता दो'' – मोनार्क नोट्स गाईड आज 26 वर्षों बाद भी छप रही है, और उसकी बीस लाख प्रतियाँ बिक चुकी है, इस तरह वह उनकी व्यापक रूप से पढ़ी जाने वाली किताब सिद्ध हुई है। किंतु इसके बदले में उन्हें एक बर्मी

बिल्ली खरीदी जा सके के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। कभी आपको उनके व्याख्यान सुनने का अवसर मिले तो उनसे इसके बारे में पूछना ना भूलें।

जो भी हो यह मोनार्क नोट्स गाईड – गेट्टो की एकमात्र पुस्तक जिसको धीमी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे छात्रों द्वारा पढ़े जाने की संभावना है, उन तथाकथित ''शैक्षणिक संस्थाओं'' में – एक प्रज्जवलनशील रचना है। और केवल काली-और-लाल जिल्द के कारण ही नहीं।

केसी का शानदार उपन्यास और लाजवाब फिल्म, जिसमें एक युवा जैक निकलसन (तब तक नहीं देखें जब तक आप इसे पढ़ न लें), एक विद्रोही की कहानी है – रैण्डल पैट्रिक मैकमर्फी – जो खुद को (या जो अंदर जाने का रास्ता पा जाता है) एक शासकीय पागलखाने में, 1960 के दशक में पाता है। एक बार अंदर जाने के बाद, वह स्वयं को नियमों, प्रक्रियाओं तथा शिष्टाचारों के मकड़जाल में आबद्ध पाता है – जैसे उसके हाथों में बच्चों के दास्ताने हो और सामने हिंसा व दमन का इस्पाती पंजा है – नि:संदेह जिसे रोगी के अपने हित में बनाया गया है। एक के बाद एक दृश्यों में मैकमर्फी उन ताकतों की जाँच-पड़ताल करता है जो संस्थान के पीछे हैं अर्थात् ''द कम्बाइन'', जिसका प्रतीक है ''बड़ी परिचारिका'' (द बिग नर्स) जो वार्ड को नियंत्रित करती है और अंतत: जिसके हाथों में प्रत्येक रोगी का भाग्य रहता है। मैं इस किताब को आपके लिए बर्बाद नहीं करना चाहूँगा। मेरा सुझाव है कि आप इसे पढ़ें और आपकी कोई युवा संतान है तो उसके साथ पढ़े, और यदि आप इसे पढ़ चुके हैं, तो नई दृष्टि पाने के लिए दोबारा पढ़ें।

केसी के उपन्यास की पृष्ठभूमि दयाहीन संस्थागत अनुकूलन (कंडीशनिंग) के विरोध में है। वार्ड में होने वाली बैठकें ऊपर से लोकतांत्रिक ढंग से आयोजित प्रतीत होती हैं। वहाँ रहने वालों (नहीं, यहाँ उन्हें रोगी कहा जाता है) की जवाबदारी तय भी की जाती है, परंतु किसी को भी यह शीघ्र ही समझ में आ जाता है कि पागलखाने में कोई लोकतंत्र नहीं है और जवाबदारी मात्र दिखावा है। रोगियों को बिना उनकी सहमति के सुनिर्धारित समूहों में – खतरनाक, लंबे समय से बीमार लोगों में बाँट दिया जाता है और इसका भी विभाजन वाकर्स (जो चल सकते हैं), व्हीलर्स (जो स्वयं चल नहीं सकते हैं) और वेजीटेबल्स (जो हिल-डुल भी नहीं सकते हैं) के बतौर किया जाता है। कम्बाइन के लिये उच्चतम मूल्य न तो लोकतंत्र है और न ही जवाबदारी है, अपितु यह शुद्ध और

सरल *अनुपालन* है, और इसकी पसंदीदा रणनीति है ''बाँटो और जीतो'' और अगर यह कारगर नहीं हुई तो मादक पदार्थ तो हैं ही।

इस बात पर मुझे संदेह है कि कभी मोनार्क नोट्स के सेटों की साहित्यिक प्रशंसा भी हुई होगी, परंतु गेट्टो उससे अधिक के हकदार हैं। केसी की संस्थागत दुनिया का जैसा उन्होंने वर्णन इन दाहक संक्षिप्त नोट्स में किया है (वे तो चे'ग्वेरा को भी उद्धृत करते हैं: ''अपने शत्रु को शिक्षित करो, उसे मारो मत, क्योंकि वह आपके लिए जीवित अधिक काम का है, बजाय मृत के।''), यह उतना ही प्रबल है जितना कि उपन्यास। वे कम्बाइन का वर्णन करते हुए कहते हैं जो इस लघु संसार को नियंत्रित करते हैं, ''वे सर्वशक्तिशाली, विश्व को चारों ओर से घेरने वाले, मस्तिष्क नाशक, ऐसे टेक्नोक्रैट हैं, जो ऐसा संसार रचना चाहते हैं जहाँ केवल नियमनिष्टता, कुशाग्रता और स्वच्छता हो ... ऐसी जगह जहाँ कार्यक्रमों को तोड़ा नहीं जा सकता।'' ऐसी दुनिया में, उनका कहना है, न तो दु:ख है न प्रसन्नता, कोई मरता नहीं है, वे केवल जल जाते हैं और उनका पुनर्चक्रीकरण होता है; वस्तुत: यह एक सुरक्षित स्थान है, हर बात योजनाबद्ध है – न तो कोई जोखिम है न आश्चर्य। गेट्टो के शब्दों में इस विश्व के अंदर, ''शब्द तथा अर्थहीन दिनचर्याएँ लोगों को जीवन से ही पृथक कर देती है, उनके इर्द-गिर्द क्या हो रहा है उसके प्रति उन्हें अंधा बना देती है और उनकी नैतिक क्षमता को निष्प्राण कर देती है। इस आरोप के बचाव में – जो बेशक व्यंग्यात्मक है – वे कहते हैं कि बड़ी परिचारिका (नर्स) निर्धनों को दान देती है। केसी के उपन्यास की धुरी, बकौल गेट्टो ''यह अत्यंत विध्वंसक रहस्योद्घाटन है कि पागलखाने के मनोरोगियों से कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं की जाती बल्कि वे स्वेच्छा से यहाँ रहते हैं।'' और जिस प्रकार उन पर नियंत्रण रखा जाता है, वह अंतत: उनके अपराधबोध, शर्म, भय तथा अन्य से कमतर होने की भावना के कारण है।

और अब, अपने आगामी 25 वर्षों के कॅरियर की ओर देखते हुए, गेट्टो हमे बाहर निकलने का रास्ता भी बतलाते हैं, ''पागलखाने से बाहर निकलने का रास्ता यही है कि नियंत्रण पैनल को उखाड़कर बाहर फेंक दें, रीइन्फोर्स्ड खिड़कियों को चकनाचूर कर दें, प्रतीकात्मक रूप से आध्यात्मिक स्तर पर नियमों, आदेशों और अन्य लोगों की आवश्यकताओं से स्वतंत्र हो जाएं।'' ''आत्म निर्भरता'', उनके अनुसार, ''संस्थात्मक

मूर्खता का उपचार (एन्टीडोट) है।''

हम सब को आभार व्यक्त करना चाहिये की जॉन गेट्टो ने अपनी खुद की सलाह मानी, और *''डम्बिंग अस डाउन''* से आरंभ करके संकल्पपूर्वक हमें बताया कि ''अंदर की ओर जीवन'' वास्तव में क्या है, जिसे की हम, मन ही मन पहले से नहीं जानते थे। चीफ ब्रोमडेन की भाँति – केसी के उपन्यास का मूक-बधिर इंडियन, जिसे अंतत: उसकी आवाज़ मिल गई – वह छुप कर निकलने में सफल हो गया। यह कदाचित सर्वश्रेष्ठ वर्णन नहीं है, क्योंकि जॉन ने बड़े छीटें उड़ाए हैं, और मुझे यह सम्मान मिला है कि मैं उस लहर में सहायक हो सकूं।

जब मैंने पहली बार, 1989 में उस पांडुलिपि को पढ़ा जो *''डम्बिंग अस डाउन''* बनने वाली थी, तो उसने मुझे उस पहेली का अनुपम उत्तर उपलब्ध कराया, जो मैं स्वयं ढूँढ नहीं पाया था। उस समय मेरी बड़ी बेटी दो वर्ष की थी – मेरी अपनी पुस्तक *''एंड द स्काईलार्क सिंग्स विथ मी''* से बहुत पहले की बात है जब मेरी आँखो में उसकी चमक भी नहीं थी। मैंने शिक्षा पर लिखने वालो को पढ़ना शुरू ही किया था – दोनों ही किस्म के, वे जो पोखर के बाई तरफ पर थे और वे जो ''कम अनर्थकारी'' दिशा की ओर तैर रहे थे।

उस समय मेरे लिये जो अजीब लगने वाली बात थी – और आज तक है, कि दोनों एक ही पोखर के कितने हिस्से को हथियाए हुए हैं। सार्वजनिक शिक्षा जगत का दोनों का वर्णन लगभग समानान्तर है, भले ही वे उसके मूलभूत कारणों को अलग ढंग से देखते हों। वे सभी सार्वजनिक शिक्षा की न्यूनताओं को रेखांकित करते दृष्टिगत होते हैं। उनके आग्रह के बिन्दूओं में भले ही समानता न हो किंतु वे प्राय: उस बोरियत, निरर्थक प्रतिस्पर्धा, बलात् लादी गई सामाजिक और आर्थिक परेशानियाँ, किसी भी कार्य में वास्तविक रूचि का नितांत अभाव – शैक्षणिक या अन्य कोई भी – पशुता और हिंसा, ''आत्मबेजानता'' आदि को रेखांकित करते हैं जो आज की शिक्षा की विशेषता के रूप में जानी जाती हैं। अल्फी कोहन (नर्मपंथी) से लेकर थामस सोवेल (परंपरावादी) तक, वे सभी आधुनिक शिक्षा की खामियों का जिक्र करते हैं यद्यपि उनके उपचारों में प्राय: जमीन-आसमान का फर्क होता है। और मेरे मित्रों के पास उनकी अपनी कहानियाँ बतौर इनमेट्स (ओह, क्षमा करें, मेरा अभिप्राय छात्रों से हैं) बतलाने को है कि किस प्रकार

उन्हें लज्जित, संत्रस्त, ड्रग्ड किया गया और बोरियत से घायल किया गया या फिर सीधे-सीधे उनकी अवहेलना की गई – वे अपने अनुभवों को अधिक स्पष्ट रूप से याद करते हैं, बजाय उन बातों के जो उन्हें कभी दिखावे के तौर पर पढ़ाई गई थी।

इसके बावजुद यह विचार कि स्कूल असफल हो रहे हैं, का अर्थ आज तक मैं समझ नहीं पाया। कुछ भी हो स्कूलों का संचालन उच्च वेतन प्राप्त और शिक्षित शासकीय अधिकारी करते हैं जिन्हें स्थानीय निर्वाचित स्कूल बोर्ड नियुक्त करता है। मेरे पड़ोसी हैं ये सब – जिसके कर्मचारी शिक्षा के स्नातक स्कूलों द्वारा तैयार किये गए हैं, और जिन्हें उन विद्वानों ने पढ़ाया था जो हमारे अभिजात निजी विश्वविद्यालयों जैसे येल अथवा शिकागों में प्रशिक्षित थे। यहाँ शिक्षकों को सम्मानित किया जाता है, स्कूल प्रशासकों को एक लाख डॉलर से अधिक वेतन मिलता है, उन्हें पदोन्नतियाँ दी जाती हैं, स्कूल बोर्डों का चुनाव होता रहता है, और मतदाता उन्हें चुनते ही जाते हैं, स्कूलों को अधिक राशि दिये जाने हेतु अपना मत देते हैं, शिक्षा के स्नातक स्कूल बड़े, और भी बड़े होते जाते हैं। यदि ये असफल संस्थान हैं, तो अपनी असफलता के प्रदर्शन का इससे अधिक हास्यास्पद ढंग और क्या होगा ?

गेट्टो ने इस पहेली को समझने की चाभी उपलब्ध कराई है और आज भी उपलब्ध करा रहे हैं। इस समझ का केंद्रीय तथ्य यह है कि स्कूल *असफल नहीं हो रहे हैं।* इसके विपरीत वे वह सब करने में अत्यधिक सफल हो रहे हैं, जिसके लिए उन्हें आरंभ से ही तैयार किया गया है। इस पद्धति को जिसे शिकागो विश्वविद्यालय, कोलंबिया टीचर्स कॉलेज, कार्नेगी-मेलोन और हार्वर्ड में आदर्श बनाया गया है, को उद्योग जगत के महारथियों ने दिल खोलकर धन उपलब्ध कराया है और इसका उद्देश्य ऐसी श्रमशक्ति के सृजन को सुनिश्चित करना था जिसे आसानी से नियंत्रित किया जा सके, जो नमनीय हो, ताकि कार्पोरेट पूँजीवाद की बढ़ती, परिवर्तनशील माँग को पूरा किया जा सके – ''बीसवीं'' सदी की नई माँग की पूर्ति हेतु – वे ऐसा तब कह सकते थे। कम्बाइन (ऊफ, फिर गलती हो गई!) सुनिश्चित करता है कि ऐसी श्रमशक्ति विद्रोह नहीं करेगी – जो कि बीसवी शताब्दी के अंत में सबसे बड़ा डर है - वह शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक रूप से कार्पोरेट संस्थानों पर अपनी राय, आत्म गौरव तथा प्रेरणा के लिये आश्रित होगी, जो अपने जीवन के सामाजिक अर्थ को केवल भौतिक वस्तुओं के उत्पादन

और उपभोग में सीखेगी। हम सब ऐसे ही संस्थानों में बड़े हुए हैं और जानते हैं कि वे कैसे काम करते हैं। उनमें 1980 के दशक के बाद से कोई खास परिवर्तन नहीं आया है – वे ठीक वही काम कर रहे हैं जिसकी उनसे अपेक्षा की गई थी।

हाल ही के एक व्याख्यान में, जिसमें मैंने उनका परिचय दिया, जॉन ने यूनाइटेड स्टेट्स के श्रम विभाग के आंकड़े प्रस्तुत किये जो उन नौकरियों के विषय में थे, जिन पर आज मुख्यत: अमरीकियों का कब्जा है। वह काम जिसमें व्यक्तियों की सबसे बड़ी संख्या है और वह धंधा जिससे गत 30 वर्षों में सर्वाधिक वृद्धि हुई है, वह वालमार्ट लिपिकों* का है। दूसरे क्रम पर मैकडॉनल्ड का बर्गर फ्लिपर है और तीसरे पर बर्गर किंग फ्लिपर है। और इसके लगभग निकट? प्राथमिक स्कूल शिक्षक। इन कामों में और बीसवी सदी के आरंभिक भाग के दिनों में अर्थात् हेनरी फोर्ड के समय में मुख्य अंतर यह था कि हेनरी फोर्ड की इच्छा यह रहती थी कि उनके कामगारों को अच्छा वेतन मिले ताकि वे खुद नई कार (खाना, मकान और चिकित्सा सुविधा भी) रख सकें और इस प्रकार ऐसा भोक्ता इंजन उपलब्ध हो सके जिससे निगम की लाभप्रदता की सुनिश्चितता बनी रहे। अब, बाजार स्थल का वैश्वीकरण होने से यह एकदम साफ है कि उद्योग के महारथियों को कोई चिंता नहीं है।

वे दरअसल किस बात की चिंता करते हैं ? कि सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक ही रहे। कार्पोरेट संस्थानों ने अपनी मूलभूत प्रशिक्षण आवश्यकताओं का बोझ भी हम पर डाल दिया है, और हम स्वेच्छा से भुगतान करते हैं, अपनी दासता की बेड़ियों को और अधिक मजबूत करने के लिये।

यहाँ तक तो सब ठीक है। किंतु यहाँ से जो यक्ष प्रश्न उठता है, वह है कि यदि शैक्षणिक संस्थाएं स्पष्टत: इतनी सफल हैं तो हम हमेशा उनकी असफलता की बातें क्यों सुनते हैं ? और यहाँ गेट्टो हमें माकूल उत्तर दे सकते थे, क्योंकि न्यू यॉर्क सिटी स्कूल शिक्षक बनने से पूर्व अपने समय से पहले ही नष्ट हो जाने वाले कैरियर में मोनार्क नोट्स लिखने के एक दशक पूर्व और इस *''डम्बिंग अस डाउन''* के लगभग चार दशक पूर्व वे एक एडवर्टाइजिंग कॉपीराइटर, ''एक नौजवान,'' जैसा वे ''द ग्रीन मोनोंगहेला'' में लिखते हैं, ''जिसमें तीस सेकंड का टेलीविज़न कमार्शियल लिखने का कौशल है''। कॉपीराइटर जानता है कि किसी उत्पाद या सेवा को बेचने के लिये, व्यक्ति को

*वस्तुत: वालमार्ट और उसके परिवार द्वारा नियुक्त लोगों की संख्या निम्न में से प्रत्येक राज्यों की जनसंख्या से अधिक है : अलाबामा, अलास्का, अर्कन्यास, कोलोराडो, कनेक्टिकट, मोन्टाना, डेलावरे, हवाई, इओवा, कन्यास, केन्चुकी, लाउसियाना, मेन मिसिसिपी, डकोटा, ओक्लाहामा, ओरेगान, रोड आयलैंड, साउथ केरोलिना, नेब्रास्का, नेवाडा, न्यू हैम्पशायर, न्यू मैक्सिको, नार्थ वर्मान्ट, वेस्ट वर्जीनिया, और वायोमिंग।

आवश्यकता की अवधारणा तैयार करनी पड़ती है और ऐसी सुस्पष्ट भावना सृजित करनी पड़ती है जो कि उक्त बेचे जाने वाले उत्पाद या सेवा को खरीदे बगैर पूरी नहीं हो सकती। एक सरल सी धारणा कि ''हमारे स्कूल असफल हो रहे हैं'' के फलस्वरूप एकदम से संस्थानों व उनके समर्थकों की और अधिक संसाधनों की माँग में बदल जाती है : अधिक किताबों के लिये, शिक्षकों के लिये, कम्प्यूटरों के लिये, रीयल स्टेट के लिये (और इस वजह से पुस्तक प्रकाशकों, शिक्षा के स्नातक स्कूलों, कम्प्यूटर निर्माताओं और रीयल एस्टेट विकसित करने वालों के लिये) – और अधिक समय के लिये : अधिक प्री स्कूलों, अधिक होमवर्क, स्कूलों के अधिक लंबे सत्र, मध्यावकाश की समाप्ति और अर्ध (शीघ्र ही पूर्ण) अनिवार्य ग्रीष्मकालीन स्कूल। कॉपीराइटर की तबीयत को बाग-बाग कर देने वाला यह ज़ीरो-सम गेम है। न केवल उपभोक्ताओं की अंतहीन धारा है जिनमें कोई संस्थात्मक स्मृति तक नहीं है या नगण्य स्मृति है और कभी न पूरी की जा सकने वाली माँग है। बल्कि सच तो यह है कि शैक्षणिक बाजार का कितना ही विस्तार क्यों न हो जाए, 50 प्रतिशत स्कूल हमेशा ''औसत से नीचे'' रहेंगे, जिन्हें खराब प्रदर्शकों के वर्ग में रखा जाएगा, वे साल-दर-साल बदलते जाएंगे और जो मध्यबिंदु से ऊपर हों उन्हें भय बना रहेगा कि वे बड़े गड्ढे में गिरने वाले हैं। और कॉपीराइटर ने आपका काम कर दिया है, जैसा की हर कोई विश्वास करता है, साधारण श्रेणी से भी नीचे गिरावट की एक ही अनुक्रिया है कि अपना रास्ता खुद बनाएं।

यह रणनीति असाधारण रूप से समुपयुक्त है, परन्तु इतनी ज़्यादा पारदर्शी है कि उसके साथ यह खतरा हमेशा जुड़ा रहा कि उसके तलछट के चतुराई भरे खेल को कोई भी देख सके, सिवाय इसके कि वह एक-एक बच्चे तक पहुँच जाती है। दूसरे शब्दों में ''कम्बाइन'' हमारे माता व पिता से प्राप्त प्रवृत्तियों का शिकार करता है। अत : शिक्षा सुधार की नवीनतम पुनरावृत्ति (मेरे अल्प जीवनकाल में सुधारों का ऐसा पाँचवा सेट) नई परीक्षणीय रणनीतियों (वस्तुत: पुरानी) के साथ आती है, जहाँ यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि बच्चों की बहुत बड़ी संख्या लगातार 'फेल' होती रहेगी – या तो एक दूसरे से तुलना में, या अन्य स्कूलों के बच्चों की तुलना में या ट्यूनीशिया या स्लोवानिया की कहीं अधिक उत्पादक अर्थव्यवस्थाओं में रहने वाले बच्चों की तुलना में। उन कमियों और सतत् असंतोष जो वे उत्पन्न करती हैं का 'उत्तर' कमोबेश यही है ''उस कुत्ते का

बाल जिसने तुम्हें काटा है''।

इसलिये सुधार कभी पूरे नहीं होते। उसके लिये यह ज़रूरी होगा कि हम असफलता को स्वीकार करें, या उससे भी बदतर यह कि असफलता तो असफलता है ही नहीं, वह केवल एक बौद्धिक तथा भावनात्मक परनिर्भरता का समाजीकृत लागूकरण है, जिसके विषय में गेट्टो इतनी वाक्पटुता से लिखते हैं। इस बीच हम जो कर रहे हैं वह यह है कि अपने बच्चों को उन भवनों में भेजते हैं जो कभी पूरे नहीं होते और न कभी होंगे, और उन्हें मजबूर करते हैं कि वे स्कूलों में अनवरत चलने वाले निर्माण के विषाक्त धूल, धुएं और कचरे की श्वास लेते रहें।

परंतु हमारे बच्चों को उस अवसर की पात्रता है कि वे बाहर आकर खुली और ताज़ी हवा में सांस लें।

* * *

लेकिन ताज़ी हवा मिलना क्या इतना आसान है।

डेनियल ग्रीनबर्ग सडबरी स्कूल मे संस्थापक – जो एक 30 वर्षीय सफल सीखने वाला समुदाय है, जो स्व-प्रेरित सीखना और लोकतांत्रिक स्व-शासन के सिद्धातों पर आधारित है – ने लिखा है कि अग्रणी शिक्षाविदों, कारोबारी नेताओं और शासकीय अधिकारियों के बीच में शिक्षा के आवश्यक लक्षण जो 21 वीं शताब्दी में समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे को लेकर लगभग पूरी सर्व सहमति है। वे छ : बिंदुओं पर सर्व सम्मति देखते हैं :

- चूंकि समाज तेजी से बदलता है, व्यक्ति को उस संसार में आराम से काम करने की योग्यता होनी चाहिये। जिसमें कि निरंतर परिवर्तन हो रहा है। ज्ञान चकराने वाली गति से बढ़ता रहेगा। इसका मतलब यह हुआ कि विषय-वस्तु आधारित पाठ्यक्रम, जिसमें छात्रों को एक निर्धारित ढंग से जानकारी दी जाती है, वह बच्चों को उनकी वयस्क भूमिका के लिये तैयार करने हेतु कतई अनुकूल नहीं है।
- लोगों के ऊपर स्वयं अपने जीवन को निर्देशित करने की अधिक व्यक्तिगत जिम्मेदारी होगी। बच्चों को उसी वातावरण में बढ़ना चाहिये जो स्व-प्रेरणा और स्व-आकलन पर बल देता है। जो स्कूल बाहरी प्रेरक घटकों पर ध्यान देते हैं जैसे दूसरे के द्वारा तय किये गए लक्ष्यों को प्राप्त करने पर पुरस्कार या दंड, वे बच्चों को उन बातों

से वंचित कर रहे हैं जिसकी उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये अत्यधिक जरूरत है।

• दूसरों से संवाद करने, अनुभवों को बांटने, सहयोग करने और जानकारियों का आदान-प्रदान करने की योग्यता का अपना महत्त्व है। संवाद का आधारभूत साधन वार्तालाप है जिसे तर्कसंगत शिक्षा का मुख्य भाग होना चाहिये।

• क्योंकि विश्व लोकतांत्रिक समाज के अंदर व्यक्तिगत अधिकारों की वैश्विक मान्यता की ओर बढ़ रहा है, अत: लोगों का समान भागीदारों के रूप में, जिस किसी भी उद्यम में वे हों, सशक्तीकरण किया जाना चाहिये। छात्रों (और शिक्षकों) को शैक्षणिक संस्थानों के परिचालन में पूरी भागीदारी मिलनी चाहिये, जिसमें यह अधिकार भी हो कि वे उनमें आवश्यकता पड़ने पर आमूल-चूल परिवर्तन कर सकें।

• टेक्नालॉजी के कारण अब लोगों के लिये वे जो सीखना चाहे संभव हो गया है, जब वे चाहें और जिस तरीके से सीखना चाहें। छात्रों का सशक्तीकरण टेक्नॉलाजी और अपनी शैक्षणिक समय सारिणी बनाने तथा स्वयं की शिक्षा हेतु जवाबदारी तय करने के लिये किया जाना चाहिये।

• बच्चों में कठोर श्रम करने और ध्यान केंद्रित करने की अद्‌भुत क्षमता होती है, जब वे जो कर रहे हैं उसके प्रति उत्साही हों, और जिस किसी क्षेत्र में वे कुशलता प्राप्त करते हैं वह अन्य क्षेत्रों में आसानी से स्थानांतरित की जा सकती है। इसलिये स्कूलों को वैयक्तिक भिन्नता के प्रति अधिक सहनशील बनाने चाहिये और स्व-प्रेरित गतिविधियों पर अधिक निर्भर होना चाहिये।

शिक्षा कैसी होनी चाहिये, इस बारे में गेट्‌टो, ग्रीनबर्ग की दृष्टि का समर्थन करते हैं। (और उन सभी उपायों से सहमत हैं जो इसे परिणाम तक पहुँचाएं, भले ही वे कुछ लोगों तक पहुँचे), किंतु तीन दशकों से अधिक भाग तक खंदकों में व्यतीत करने के बाद, उनके पास शिक्षा का मकसद क्या हो, इस बाबत अधिक व्यावहारिक विचार है, भले ही वह श्यामवर्णी लगे। स्कूलों के बारे में उनके विचार जैसा कि वे *''द अंडरग्राउंड हिस्ट्री आफ अमेरिकन एजुकेशन''* में लिखते हैं, एक टकराव है जिसमें सामाजिक मशीनरी की आवश्यकताओं को उन मानवीय रुझानों के विरुद्ध खड़ा कर दिया गया है,

रक्त और माँस के खिलाफ एक मशीनी युद्ध जिसे आरंभ करने के लिए केवल मानवीय वास्तुकार की आवश्यकता है।

इसे सीधे-सपाट शब्दों में कहें तो: मुद्दों की दृष्टि में, ''कम्बाइन'' को मूक वयस्कों की आवश्यकता है, और इसलिये वह सुनिश्चित करता है कि उसके द्वारा तैयार किये जा रहे गूंगे बच्चों का निरंतर प्रदाय होता रहे। इस अवधारणा से यह स्पष्ट है कि डेन ग्रीनबर्ग गलत हैं। चूँकि चारों और से घिरे हुए टेक्नोक्रेटों की सदैव आवश्यकता बनी रहती है, जिनकी नई पौध पुरानों का स्थान ले लेती है। कम्बाइन के पास उन लाखों आत्मनिर्भर, आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने वाले व्यक्तियों का सीमित उपयोग है, जो बोलते हैं, अपनी ज़रूरतो का बतौर व्यक्ति एवं समुदाय स्वयं निर्धारण करते हैं और जो ''कंबाइन'' के आदेशों और प्रलोभनों से मुक्त हों। वस्तुत: जब ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व होता है तब कम्बाइन उनसे भयभीत रहता है। वह कभी-कभार उनके मूल्यों की दिखावे के लिये भले ही प्रशंसा कर दे – किंतु अंत में उसके पास कलाकारों, नर्तकों, कवियों, आत्मनिर्भर कृषकों, वृक्ष मित्रों, जिसे वह गैर-भौतिकावादी पंथ के अनुयायी मानता है – क्रिश्चियन या हस्तशिल्प श्रमिक, अपनी बीयर स्वयं बनाने वाले और घर में रहने वाले माता-पिता मानता है, का कोई वास्तविक उपयोग नहीं है। ये सब के सब सामाजिक अर्थव्यवस्था के हाशिये या उसके घेरे के बाहर आते हैं। कम्बाइन को सबसे अधिक आवश्यकता जिसकी है वे है वाल-मार्ट के लिपिक, बर्गर फ्लिपर्स तथा समर्पित लेकिन कम वेतन पाने वाले, शासन द्वारा नियुक्त ''विदेश सेवा अधिकारी'' जो अपने शिक्षक होने का गर्व पाले हुए हैं, जो बेचैन देशवासियों को विद्रोह करने से रोकते हैं, जबकि मानवीय व अन्य प्रकार के संसाधनों एवं पूँजी का दोहन बिना रूके चलता रहता है। और अंतिम विश्लेषण में स्पिन डॉक्टरों तथा सर्वाधिक तुच्छ लोगों को वे नियुक्त करते हैं।

कंबाइन कोई समझौता नहीं करता और किसी कैदी को स्वीकार तब तक नहीं करता जब तक कि वह उसकी प्रत्येक नस की शिराओं का – प्रत्येक सूक्ष्म भाग तथा मन की प्रत्येक आदत का उपनिवेशीकरण नहीं कर लेता – जैसा कि उसने इस धरती माता के प्रत्येक वर्ग इंच का कर लिया है।

परंतु यह रणनीति पूरी तरह से काम नहीं कर पा रही है। हर मैकमर्फी के लिये

जिसने अपने दिमाग को तलवा लिया है, एक संभावना है कि कोई चीफ ब्रोमडेन निकल भागे। यहाँ राजपथ की दरारों में घांस उग रही हैं, जिसको उखाड़ा नहीं जा सकेगा – हम वो ही घांस हैं: आप, मैं और डैन ग्रीनबर्ग और हमारी भड़काऊ पुस्तक का लेखक। अब एक मिलियन होमस्कूलर हैं। और शीघ्र ही और एक मिलियन होमस्कूलर पूर्व छात्र (एल्युम्नी) हो जाएंगे। और बहुत संभव है, गत सदी के वैकल्पिक स्कूल आंदोलन की भाँति नहीं जो आरंभ होने के पहले ही दम तोड़ गए, ताकत आएगी – जिसमें बहुत सारी घाँस ऊँचे पेड़ बन चुकी होगी – जो कम्बाइन के राजपथ को अपने प्रबल इंजनो से रौंद डालेगी।

गेट्टो अपने लेखों, जीवन और साक्ष्य के जरिये संकेत देते हैं कि उन्हें विश्वास नहीं है कि बड़ी सामाजिक समस्याओं के लिये व्यक्तिगत प्रयासों से कोई समाधान निकलेगा – वे खुद अपने बल पर कंबाइन को नष्ट नहीं कर सकेंगे। परंतु उन्होंने यह भी कर दिखाया है – और यह *''डम्बिंग अस डाउन''* के प्रकाशन की दसवीं सालगिरह उस अंतर्दृष्टि का समारोह है कि हम अपनी उस विरासत में प्राप्त आज़ादी के दुर्बल क्षेत्रों को बचाकर और उन्हें विस्तारित करके ही जीत पाएंगे, अर्थात् रास्ते की उन दरारों को चौड़ा करके, और उस सामान्य ऊर्जा, सृजनात्मकता तथा कल्पना को पुन: प्राप्त करने की शुरुआत करके, जो कि एक बच्चे के रूप में महान प्रकृति ने हमें जन्म से ही दे रखी है, और वही आने वाले बेहतर कल की उस वचनबद्धता को संजोकर रखेगी।

ओलंपिया, वाशिगंटन
5 सितंबर 2001.

(डेविड अल्बर्ट *''एंड द स्कायलार्क सिंग्स विथ मी:'' एडवेंचर्स इन होम-स्कूलिंग* और *कम्यूनिटी-बेस्ड एजुकेशन* , न्यू सोसायटी पब्लिशर्स,1999 के लेखक हैं)

लेखक के विषय में

मैं आपसे यहाँ विचारों के बारे में बाते करने के लिये आया हूँ, किंतु मैं समझता हूँ कि अपने बारे में कुछ बताने से उद्देश्य हल हो सकेगा, अत: मैं आपकी तरह ही इन्सान होकर आपसे बात कर रहा हूँ, एक टेलीविज़न सेट पर बाते करने वाला नहीं। मैं जानता हूँ कि जब कभी मैं टीवी पर खबरों की रिपोर्ट सुनता हूँ, तब मैं अचरज करता हूँ कि *तुम* (उद्घोषक) कौन हो? और, तुम मुझे यह सब क्यों बता रहे हो? इसलिए मुझे उस भूमि के बारे में कुछ बताने दीजिए जहाँ से ये विचार प्रस्फुटित हुए हैं।

मैं न्यूयार्क शहर में स्कूल शिक्षक के बतौर गत तीस वर्षों से कार्य कर रहा हूँ, इस दौरान कुछ समय तक मेनहटन के ऊपरी पश्चिमी सिरे के अभिजात्य बच्चों को भी पढ़ाया है। उस अवधि में मैंने छ: विभिन्न स्कूलों में पढ़ाया है। मेरा वर्तमान स्कूल सेंट जॉन नामक पवित्र गिरजाघर की छाँव में है, जो संयुक्त राज्य की सबसे बड़ी गोथिक संरचना है, और जो प्रसिद्ध म्यूज़ियम ऑफ नेचरल हिस्ट्री तथा मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम ऑफ आर्ट से अधिक दूरी पर नहीं है। मेरे स्कूल से लगभग तीन ब्लॉक्स दूर वह जगह है से जहाँ ''सेंट्रल पार्क जागर'' (जैसा की मीडिया मिथकशास्त्र उसे कहते हैं) का बलात्कार हुआ था, उसे निर्दयता से पीटा गया था – नौ में से सात हमलावार मेरे जिले के स्कूलों में से थे।

संसार के बारे में मेरी अवधारणा को वस्तुत: न्यूयार्क सिटी से बहुत दूर आकार

मिला, पेनिसिल्वेनिया के मोनोंगहेला में, जो पिट्सबर्ग से सैतालिस मील दक्षिण पूर्व में स्थित है। उन दिनों मोनोंगहेला इस्पात मिलों और कोयला खदानों की जगह थी, जहाँ पैरों से पैडल मारकर चलने वाले स्टीमर थे जो रसायनी नारंगी रंग के एमरल्ड हरे जल को मथते हुए चलते थे। यहाँ कठोर परिश्रम और पारिवारिक जीवन के लिये आदर था। मोनोंगहेला में वर्ग भेद नहीं था क्योंकि यहाँ पर हर कोई कमोबेश गरीब था, यद्यपि बहुत कम, मैं मानता हूँ यह जानते थे कि वे गरीब हैं। यह ऐसी जगह थी जहाँ स्वंतत्रता, दृढ़ता और आत्मनिर्भरता को सम्मान प्राप्त था, ऐसी जगह जहाँ परंपरा एवं स्थानीय संस्कृति के प्रति अत्यंत गर्व था। यह निर्धनों के बढ़ने के लिये भी एक आदर्श स्थान था। लोग एक दूसरे से बातें करते थे, एक दूजे के मामले में रूचि लेते थे, सिर्फ दुनिया के अमूर्त व्यापर में नहीं। हमारा बड़ा संसार पिट्सबर्ग के आगे शायद ही जाता था, जो एक उम्दा इस्पात नगर था, वर्ष में एक या दो बार जाने लाायक। मेरी स्मृति में ऐसा कोई नहीं था जो यह सोचता था कि वह मोनोंगहेला में बंध कर रह गया है, या किसी को भी यह कहते नहीं सुना कि वह कहीं और न रह पाने के कारण कुछ खो रहा है।

मेरे दादा मुद्रण व्यवसाय में थे, और कुछ समय के लिये कस्बे के समाचारपत्र *''द डेली रिपब्लिकन''* के प्रकाशक रहे। अपने दादा और उनके स्वतंत्र जर्मन तरीकों से मैंने बहुत कुछ सीखा जो कदाचित मैं न सीख पाता जैसा आज है, जब बुजुर्गों को वृद्धाश्रम में डाल दिया जाता है या फिर नज़रों से दूर रखा जाता है।

मैनहटन में रहना मेरे लिये अनेक नज़रियों से चंद्रमा पर रहने जैसा रहा है। हालाँकि मैं यहाँ पर पिछले पैंतीस वर्षों से रह रहा हूँ पर मेरा दिल और आदतें अभी भी मोनोंगहेलाई हैं। जो भी हो मैनहटन के एकदम अलग समाज तथा मूल्यों ने मेरी पृथकता की समझ को धारदार बनाया है तथा मुझे मानव-विज्ञानी के साथ-साथ स्कूल शिक्षक भी बना दिया। पिछले तीस वर्षों से अधिक समय तक मैंने अपनी कक्षाओं का प्रयोगशाला की भांति उपयोग किया है जहाँ *मैं* सीख सका कि मानवीय संभाव्यता की विस्तृत सीमा क्या है – ''आशाओं और शंकाओं'' का पूरा सूचीपत्र – और ऐसे स्थान के बतौर जहाँ मैं अध्ययन कर सकता था कि मानव शक्ति को क्या मुक्त करता और क्या बाधित करता है।

उस दौरान मुझे विश्वास हो गया था कि प्रतिभा एक अत्यंत सामान्य मानवीय गुण है – कदाचित हममें से अधिकांश में प्राकृतिक रूप से विद्यमान है। मुश्किल ये थी कि ऐसे बच्चे जिनसे कभी आशा नहीं थी, वे भी अप्रत्याशित रूप से एकाएक कभी भी मानवीय प्रतिभा के अनेक लक्षणों को प्रकट कर देते थे – अंतर्दृष्टि, उपाय कुशलता, साहस, विवेक, मौलिकता – कि मैं भ्रमित हो जाता था। ऐसा वे बार-बार नहीं करते थे, मेरे शिक्षणों को आसान बनाने के लिये, अपितु प्राय: करते तो थे, जिसके कारण मैं बेमन से आश्चर्य करने लगा कि क्या यह संभव है कि स्कूल में होना ही उन्हें मंदबुद्धि (डम्ब) बनाना है। क्या यह संभव है कि मुझे बच्चों की शक्ति को बढ़ाने के लिये नहीं बल्कि कम करने के लिये नियुक्त किया गया है? ऊपर से यह बड़ा झक्की विचार लग सकता है, किंतु शनै: शनै: मुझे अनुमूति होने लगी कि घंटियाँ और कैद, सनकी क्रमवारता, आयु के अनुसार पृथक्करण, निजता की कमी, निरंतर निगरानी और स्कूल पद्धति के बाकी राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की जानबूझ कर रचना, किसी के द्वारा इस तरह से की गई है कि बच्चों को यह न सीखने दिया जाए कि वे किस तरह सोचकर क्रिया करें, वे व्यसनी और दूसरों पर निर्भर बने रहें।

टुकड़ों-टुकड़ों में मैंने गुरिल्ला अभ्यास ईजाद करना शुरू किया, कि जितने बच्चों को मैं पढ़ाता था उनमें से यथासंभव अधिकाधिक को कच्चे माल की तरह प्रयुक्त कर उन्हें छोड़ दिया जाए ताकि वे अपने आपको शिक्षित करें। उन्हें निजता, विकल्प, निगरानी से मुक्ति और इतनी व्यापक स्थितियाँ तथा मानवीय साहचर्य उपलब्ध कराया जाए जितना मेरे सीमित संसाधनों व सामर्थ्य के अंतर्गत संभव था और जितने का मैं प्रबंधन कर सकता था। सरल शब्दों में, मैंने प्रयास किया कि ऐसा वातावरण निर्मित करूँ जिसमें उन्हें अपना अध्यापक स्वयं बनने का अवसर मिले और वे अपनी शिक्षा का प्रमुख मूल पाठ बन सकें।

सैद्धांतिक, अलंकारिक मायनों में विचार जिसकी खोज करना मैंने आरंभ किया वह था: कि अध्यापन चित्रकारी के जैसा नहीं होता जिसमें सतह पर किसी वस्तु को डालने से कोई छवि कृत्रिम ढंग से निर्मित होती है, अपितु वह *शिल्प कला* के समान है जहाँ सामग्री को तराश-तराश कर निकालने के द्वारा, छवि जो पहले से ही पत्थर के अंदर *बंद* थी, उसे सामने लाया जाता है। यह एक अहम् फर्क है।

अन्य शब्दों में, मैंने उस विचार को त्याग दिया कि मैं एक विशेषज्ञ था जिसका काम दिमागों को अपनी विशेषज्ञता से भरना था, और में इस खोज में लग गया कि मैं किस प्रकार उन व्यवधानों को हटाऊँ जो बच्चों में अंतर्निहित प्रतिभा को उभरने से रोकते हैं। अब मुझे अपने काम को इस प्रकार परिभाषित करते हुए असुविधाजनक लगता था कि वह संघर्षरत कक्षा के छात्रों को बुद्धि प्रदान करना है। यद्यपि आज तक मैं उन निरर्थक निबंधों से जकड़ा हूँ क्योंकि संस्थात्मक अध्यापन की प्रक्रिया ही ऐसी है, किंतु जहाँ कहीं भी संभव हुआ, मैंने अध्यापन की परंपरा तोड़ कर बच्चों को उनके अपने मार्ग पर चलकर उनके अपने निजी सत्यों की ओर जाने हेतु प्रेरित किया है।

शासकीय एकाधिकार वाले स्कूलों का समाजशास्त्र इस तरह से विकसित हुआ है कि मेरे जैसे तर्कों का आधार यदि फैला तो उनके लिये संकट खड़ा हो जाएगा। उन्हें बांध कर रखा जाए तो कोई शिक्षक जो मेरे जैसी खोज करता है, वह शक्ति शृंखला के क्रोध का पात्र बन सकता है (जिसने (स्कूल ने) स्वचालित सुरक्षा का ऐसा बचाव तंत्र गढ़ रखा है कि वह उस कीटाणु को निष्क्रिय कर देता या नष्ट कर देता है।) किंतु एक बार वह मुक्त हो जाए तो यह विचार केन्द्रीय पूर्वानुमान को जोखिम में डाल सकता है जिसके सहारे संस्थानीकृत स्कूल तंत्र खड़ा हुआ है। जैसे कि यह मिथ्यापूर्ण धारणा कि सीख कर पढ़ना मुश्किल है या कि बच्चे सीखना नहीं चाहते, और बहुत कुछ। सच तो यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था की स्थिरता के लिए ही संकट खड़ा हो जायेगा यदि कुछ इस तरह की शिक्षा दी जाए जो स्कूल द्वारा उत्पन्न किये जा रहे मानवीय उत्पाद की प्रकृति को ही बदल दे: स्कूली शिशु जो वर्तमान अर्थव्यवस्था के अंतर्गत रह रहे हैं, वे उस युवा पीढ़ी के समक्ष टिक नहीं पाएंगे जिसे उदाहरणार्थ आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने के लिये प्रशिक्षित किया जाएगा।

मेरे अभ्यास में सफलता का बड़ा भाग स्वयं-गतिशील और शर्त-रहित भरोसे की आवश्यकता पर निर्भर है, न कि शर्तों पर आधारित प्रदर्शन की। लोगों को अपनी गलतियाँ करने की अनुमति होनी चाहिये और उन्हें पुन: प्रयास करने देना चाहिये, इसके बगैर वे कभी खुद होकर *संपूर्ण* नहीं बन पाएंगे। हालांकि ऊपर से देखने में वे सक्षम *प्रतीत* होंगे जबकि वास्तविकता यह है कि उन्होंने केवल रट लिया है या किसी अन्य के

प्रदर्शन की नकल की है। मेरे अभ्यास में सफलता के मायने यह भी हैं कि अनेक आरामदेह पूर्वानुमानों को चुनौती दी जाए कि क्या सीखने योग्य है और किस वस्तु से अच्छा जीवन रचा जा सकता है।

बच्चे और शिक्षा के बीच के अवरोधों से वर्षों लड़ते हुए, मुझे यह विश्वास हो गया है कि शासकीय एकाधिकार स्कूलों की बनावट ही ऐसी है कि उन्हें सुधारा नहीं जा सकता। यदि उनके केंद्रीय मिथकों को जग-जाहिर कर दिया जाए या त्याग दिया जाए तो वे चल ही नहीं सकते। इतने वर्षों में मैंने देखा है कि बतौर शिक्षक जो कुछ मैं सोचता रहा उसका अधिकांश यह था कि मैं उस अदृश्य पाठ्यक्रम का अध्यापन कर रहा था जो स्कूल संस्थान के मिथक को मजबूत करता था तथा जो जाति-आधारित अर्थव्यवस्था का अंग था। जब मैं यह तय करने की कोशिश कर रहा था कि मैं आपसे क्या कहूँ जो बतौर मेरे स्कूल शिक्षक के अनुभव को उपयोगी सिद्ध करे, तब मुझे ऐसा लगा कि मेरा आपसे यह कहना अधिक उचित होगा कि जो मैं करता हूँ वह गलत है, बजाय इसके कि जो मैं करता हूँ वह सही है। जो मैं सही करता हूँ वह समझने में सरल है: मैं बच्चों के रास्ते से हट जाता हूँ, मैं उन्हें स्थान, समय और सम्मान देता हूँ। परंतु जो मैं करता हूँ वह गलत है वह अजीब, जटिल और भयकारी है। आइये मैं बतलाऊँ की वह क्या है।

अध्याय 1

सात-सबक वाला स्कूल अध्यापक

यह व्याख्यान उस अवसर पर दिया गया था जब लेखक को वर्ष 1991 के लिये "न्यू यॉर्क स्टेट टीचर ऑफ द ईयर" घोषित किया गया था।

I

कृपया मुझे गेट्टो कहें। तीस वर्ष पूर्व, मेरे लिये उन दिनों इससे बेहतर कुछ नहीं होगा, यह सोचकर मैंने स्कूल शिक्षक बनकर क़िस्मत आज़माने का प्रयास किया। मेरे पास जो लायसेंस है वह यह प्रमाणित करता है कि मैं अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य का शिक्षक हूँ, किंतु मैं वैसा कुछ नहीं करता हूँ। मैं अंग्रेजी नहीं पढ़ाता; मैं स्कूल पढ़ाता हूँ – और ऐसा करने पर मुझे पुरस्कार मिलते हैं।

शिक्षा का अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग अर्थ होता है, किंतु सात पाठ काश्मीर से कन्याकुमारी तक एक जैसे पढ़ाए जाते हैं। इनसे मिलकर ही राष्ट्रीय पाठ्यक्रम बनता है, जिसके लिये आप इतने तरीकों से पैसा देते हैं, जो शायद आप सोच भी नहीं सकते। अत: वह क्या है इसे आप जान लें तो अच्छा ही है। इन पाठों को आप जैसा मानें, वैसा मानने के लिये स्वतंत्र हैं, किंतु मेरा यकीन मानिये कि इस प्रस्तुती में

कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यही वे बातें हैं जो मैं पढ़ाता हूँ, यही वे बाते हैं जिन्हें आप मुझे पढ़ाने के लिये पैसा देते हैं। आप इसे चाहें जिस अर्थ में लें।

1. *भ्रम*

कैथी नाम की एक महिला ने मुझे यह डुबोई, इंडियाना से हाल ही में लिखा :

> कि छोटे बच्चों के लिये बड़े विचारों का क्या महत्त्व है ? सबसे बड़ा विचार जो मैं सोचती हूँ वह यह है कि उन्हें ज़रूरत इस बात की है, कि जो वे सीख रहे हैं वह मूखर्तापूर्ण नहीं है – कि उसमें कुछ व्यवस्था है और उसकी उन पर वर्षा नहीं हो रही है जिसे वे असहाय होकर सोख लें। यही वह काम है – समझना, सरल बनाना।

कैथी ने गलत समझा। *पहला पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है भ्रम, उलझन।* जो कुछ भी मैं पढ़ाता हूँ उसका न कोई सिर है न पैर। मैं असंबद्धताएँ पढ़ाता हूँ। मैं बहुत ज्यादा पढ़ाता हूँ: ग्रहों कि परिक्रमा, दीर्घ संख्या का कानून, दासता, विशेषण, स्थापत्य का चित्रण, नृत्य, कसरत, समूह गान, सभाएं, बिना सूचना के आए अतिथि, अग्निशमन कवायद, कम्प्यूटर की भाषा, अभिभावकों की शाम, कर्मचारी विकास दिवस, पुल आउट कार्यक्रम, अजनबियों से मार्गदर्शन जिनसे छात्र शायद ही कभी दुबारा मिलें, मानकीकृत परीक्षाएं, आयु के अनुसार अलगाव जैसा बाहरी संसार में कहीं नहीं देखा जाता, क्या इनमें से किसी भी चीज़ का आपस में कोई संबंध है ?

यहाँ तक कि सबसे श्रेष्ठ स्कूलों में भी पाठ्यक्रम और उसकी क्रमबद्धता का सूक्ष्मता से परीक्षण करने पर असंबद्धता और आंतरिक विरोधाभास दिखाई देता है। सौभाग्य से बच्चों के पास वे शब्द नहीं हैं जिनके द्वारा वे अपनी बदहवासी तथा क्रोध को व्यक्त कर सकें, जिसकी अनुभूति उन्हें *प्राकृतिक व्यवस्था और क्रमवारता* के निरंतर उल्लंघन के कारण होती है और जिससे उन्हें शिक्षा के नाम पर बांध दिया जाता है। स्कूल मस्तिष्क का तर्क यह है कि स्कूल को अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान से निकाले गए

प्राणहीन शब्दावली के औजारों की पेटी के साथ छोड़ दिया जाए, बजाय एक वास्तविक उत्साह के साथ। परंतु शिक्षा में गुणवत्ता का मतलब है, किसी बात की गहराई में जाकर उसे सीखा जाए। बच्चों में उलझन अनेक अपरिचित वयस्कों द्वारा बलात् थोपी जाती है जो प्रत्येक अकेले ही काम करता है तथा उनमें एक दूसरे से लेषमात्र का भी संबंध नहीं होता। वे लोग इस बात का ढोंग भी करते हैं कि उनके पास विशेषज्ञता है, जो कि दरअसल होती नहीं।

मतलब, एक दूसरे से बिखरे तथ्य नहीं अपितु प्रबुद्ध मानव अर्थ की तलाश में रहता है, और शिक्षा, संहिताओं का वह संग्रह है जो कच्चे आँकड़ों को अर्थ में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया को अंजाम देती है। स्कूली अनुगम की पैबंद लगी रजाई के पीछे और तथ्यों तथा सिद्धांतों के प्रति दीवानगी के पीछे मानव की सदियों पुरानी अर्थ की खोज छिपी-ढँकी पड़ी रहती है। इसे प्राथमिक स्कूलों में देख पाना कठिन है जहाँ स्कूली अनुभव का पदानुक्रम बेहतर विवेक का प्रदर्शन करता नज़र आता है क्योंकि ''चलो ऐसा करते हैं'' और ''चलो वैसा करते हैं'' के बीच के सुप्राकृतिक और सरल रिश्ते से यह मान लिया जाता है कि ग्राहक वर्ग (अभिभावक) अभी तक सावधानी से यह नहीं समझ पाया है कि खेल और बहाने के पीछे कितना कम सारतत्व है।

महान प्राकृतिक अनुक्रमों पर विचार कीजिए – जैसे चलना सीखना और बोलना सीखना, प्रकाश की सूर्योदय से सूर्यास्त तक की अग्रगति, किसानों की प्राचीन प्रक्रियाएं, लोहारी या चर्मकारी या धन्यवाद दावत की तैयारी। सभी अंगों का एक-दूसरे से कमाल का तालमेल होता है, हर एक क्रिया स्वयंसिद्ध है तथा अतीत एवं भविष्य को आलोकित करती है। स्कूल के अनुक्रम ऐसे नहीं होते, न तो किसी एकल कक्षा के अंदर और न ही दैनिक कक्षाओं की कुल भोजन-तालिका में। स्कूल के अनुक्रम सनक भरे होते हैं। उनमें से किसी के लिये भी कोई विशेष कारण नहीं है, किसी की सूक्ष्म जाँच नहीं की जा सकती। बहुत कम शिक्षक ऐसी शिक्षा देने का साहस जुटा पाएंगे जिसमें स्कूल या अध्यापक के निश्चित मत की आलोचना हो, क्योंकि जो हो रहा है उसे स्वीकारना ही है। स्कूली विषयों को सीखना है, यदि वे सीखे जा सकें तो, जैसे बच्चे प्रश्नोत्तर के माध्यम से सीखते हैं या किसी पाठ के नौ अनुच्छेदों को याद करते हैं।

मैं हर वो चीज़ पढ़ाता हूँ जिसका आपस में किसी से कोई तालमेल ही नहीं है, जो संबद्धता का विलोम है और उसके भी असंख्य टुकड़े हैं। जो मैं करता हूँ वह टेलीविज़न के कार्यक्रमों से अधिक संबंधित है बजाय किसी योजना को व्यवस्थित करने के। ऐसी दुनिया जिसमें घर केवल एक प्रेत है क्योंकि दोनों अभिभावक या तो काम पर जाते हैं या अत्यधिक आवागमन या कामों को लगातार बदलना या अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा, या क्योंकि किसी अन्य चीज़ ने हर किसी को इतना भ्रमित कर दिया है कि पारिवारिक रिश्तों को बनाए रखना कठिन हो गया है। मैं बच्चों को पढ़ाता हूँ कि किस तरह उलझन को अपना प्रारब्ध मानकर स्वीकार करें। यह पहला सबक है जो मैं पढ़ाता हूँ।

2. *कक्षा स्थिति*

दूसरा पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है क्लास पोजीशन। मैं पढ़ाता हूँ कि छात्र उसी कक्षा में रहें जो उनकी है। मुझे नहीं पता कि यह कौन तय करता है कि मेरे बच्चे वहाँ रहें, पर वह देखना मेरा काम नहीं है। हरेक छात्र को एक संख्या दी गई है ताकि कोई कहीं चला जाए तो उसे वापस सही कक्षा में लाया जा सकता है। विगत कुछ वर्षों में बच्चों को स्कूलों द्वारा संख्या आवंटित करने के तरीकों में नाटकीय वृद्धि हुई है, अब मानव को उस संख्या के भार से अलग करके देखना कठिन हो गया है। बच्चों का संख्याकरण एक बड़ा तथा लाभकारी उद्यम है, हालाँकि उसे प्राप्त करने के लिये कौन सी रणनीति बनाई गई है वह पकड़ में नहीं आती। मैं यह भी नहीं जानता कि अभिभावक बिना लड़े यह सब अपने बच्चों के साथ क्यों होने दे रहे हैं।

खैर, यह देखना मेरा काम नहीं है। मेरा काम है उन्हें अन्य बच्चों के साथ जिन्हें उनकी ही तरह नंबर किया गया है, एक साथ बंद कर देना या कम से कम यह देखना कि वे खिलाड़ी भावना से उसे सहन करें। यदि मैं अपना काम ठीक से करता हूँ तो बच्चे अपने आपको कहीं अन्यत्र होने की *कल्पना* भी नहीं कर सकते, क्योंकि मैंने उन्हें अपने से बेहतर कक्षाओं से ईर्ष्या करना और अपने से कमतर कक्षाओं से घृणा करना सिखला दिया है। इस कुशल अनुशासन के फलस्वरूप कक्षा स्वयं को अच्छे मार्चिंग ऑर्डर के

लिये तैयार कर लेती है। यही असली पाठ किसी स्कूल जैसी छलपूर्ण प्रतियोगिता का है। आपको अपनी जगह मालूम हो जाती है।

कुल मिलाकर कक्षा-खाके के बावजूद जो यह मानता है कि कक्षा के निन्यान्नवे प्रतिशत बच्चे अपनी ही कक्षा में रहेंगे, फिर भी मैं खुलेआम उन बच्चों को प्रोत्साहित करने की चेष्टा करता हूँ कि वे उच्च स्तर पर परीक्षा में सफल हों और बतौर पुरस्कार उन्हें संकेत देता हूँ कि उन्हें ऊपर की कक्षा में भेज दिया जाएगा। मैं निरंतर ऐसी युक्ति करता हूँ कि कभी ऐसा दिन आएगा जब नियोक्ता उन्हें टेस्ट में अर्जित प्राप्तांकों व श्रेणी के आधार पर नौकरी पे रखेंगे, यद्यपि खुद मेरा अनुभव यही रहा है कि नियोक्ता ऐसी बातों के प्रति उदासीन होते हैं। मैं कभी पूर्ण झूठ नहीं बोलता, किंतु मैंने यह देखा है कि सच और स्कूल अध्यापन असंगत है, जैसा कि सुकरात ने हज़ारों वर्ष पहले कहा था। 'संख्यात्मक कक्षाओं का सबक यही है कि हर किसी का पिरामिड में उचित स्थान है और कक्षा के बाहर संख्या के जादू के अतिरिक्त आपका कोई स्थान नहीं है। इसमें असफल रहे तो आपको वहीं रहना होगा, जहाँ आपको रखा गया है।'

3. *तटस्थता या उदासीनता*

तीसरा पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है तटस्थता या उदासीनता। मैं बच्चों को सिखाता हूँ कि वे किसी भी बात की अधिक चिंता न करें, भले ही वे चाहते हों कि वे ऐसा करते दिखाई दें। यह मैं कैसे करता हूँ बहुत रहस्यमय है – कि वे पूरी तरह मेरे पाठों में डूब जाएँ, किसी प्रत्याशा में अपनी सीटों पर उछलें-कूदें, मेरी संतुष्टि के लिये एक दूसरे से जम कर प्रतिस्पर्धा करें। मन को बड़ी तृप्ति महसूस होती है जब वे ऐसा करते हैं, सभी इससे प्रभावित होते हैं – मैं भी। जब मैं अत्यंत प्रसन्नचित्त होता हूँ तब अपने पाठों की योजना बड़ी सावधानी से बनाता हूँ ताकि जोश का खेल तैयार किया जा सके। किंतु जब घंटी बजती है, तब मैं उनसे कहता हूँ कि वे वह सब करना छोड़ दें जो कर रहे थे और शीघ्र अगले वर्क स्टेशन की ओर चले जाएँ। वे बिजली के स्विच की तरह बंद और चालू होते रहें। कुछ भी महत्त्वपूर्ण मेरी कक्षा में कभी पूरा नहीं होता या किसी भी कक्षा में जिसे मैं जानता हूँ। छात्रों को कभी भी पूरा अनुभव मिल नहीं पाता, सिवा किश्तों की योजना के।

सच तो यह है कि घंटियों का सबक यह है कि कुछ भी पूरा करने योग्य नहीं है, इसलिये किसी भी बात पर गहन चिंतन करने की ज़रूरत ही क्या? सालों साल की घंटियाँ सबको इस तरह अनुकूलित कर देंगी और पूरे विश्व को ही, कि करने के लिये कुछ भी महत्त्वपूर्ण है ही नहीं। घंटियाँ स्कूली समय के गुप्त तर्क हैं, उनका तर्क कठोर है। घंटियाँ अतीत और भविष्य को नष्ट कर देती हैं, प्रत्येक मध्यान्तर को एक जैसा बना देती हैं, जैसे कि नक्शे का सारांशन प्रत्येक अस्तित्त्वमान पर्वत और नदी को एक सा दर्शाता है, जबकि वास्तव वे एक से है नहीं। घंटियाँ हर समझ को तटस्थता का टीका लगा देती हैं।

4. *भावनात्मक निर्भरता*

चौथा पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है भावनात्मक निर्भरता। सितारा चिन्हों, लाल स्याही से जाँच, मुस्कुराते और नाराज़ होते चेहरे बनाकर, इनामों, सम्मान और अपमानित करके, मैं बच्चों को अपनी इच्छा को पूर्व निर्धारित आदेश शृंखला के समक्ष समर्पित करने को कहता हूँ। यहाँ किसी भी सत्ता या अधिकारी द्वारा अधिकार, बिना किसी अपील के दिये या आहरित किये जा सकते हैं, क्योंकि स्कूल में अधिकार होते ही नहीं हैं – अपनी बात स्वतंत्रतापूर्वक कहने का अधिकार भी नहीं, जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त है – बशर्ते कि स्कूल की सत्ता, अधिकारी कहें कि वे हैं। बतौर स्कूल शिक्षक, मैं अनेक निजी निर्णयों में हस्तक्षेप करता हूँ। उन्हें उत्तीर्ण कर देता हूँ जिन्हें मैं ठीक मानता हूँ और उस व्यवहार से अनुशासनात्मक विरोध करता हूँ जो मेरे नियंत्रण को धमकाए। बच्चों और किशोरों में विशिष्टता निरंतर स्वयं को बलपूर्वक स्थापित करना चाहती है, अत: मेरे फैसले शीघ्र और घनीभूत होकर आते हैं। विशिष्टता (इण्डिविजुअलिटी) कक्षा सिद्धांत का खण्डन है – वर्गीकरण की हर पद्धति के लिये अभिशाप।

ये कुछ आम तरीके हैं जिनसे विशिष्टता प्रतिबिंबित होती है : बच्चे निजी क्षणों के लिये शौच जाने के बहाने बाहर चले जाते हैं, या कुछ पल चुराकर गलियारे में पानी पीने के बहाने जाते हैं। मैं जानता हूँ इन बहानों को, लेकिन मैं उन्हें मुझे ''धोखा'' देने की अनुमति देता हूँ, क्योंकि ऐसा करने से वे मेरी मेहरबानियों के लिये तैयार होते हैं। कभी-कभी स्वतंत्र इच्छा ठीक मेरे सामने क्रोधित, अवसादग्रस्त या मेरी जानकारी के बाहर

खुशी के रूप में उनकी जेबों में प्रकट होती है; ऐसे मामलों में अधिकार स्कूली शिक्षकों द्वारा जाने ही नहीं जा सकते, केवल विशेषाधिकार जिन्हें आहरित किया जा सके, सद्व्यवहार के बंधक।

5. *बौद्धिक निर्भरता*

पाँचवा पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है बौद्धिक निर्भरता। अच्छे विद्यार्थी प्रतीक्षा करते हैं कि शिक्षक बताए कि उन्हें क्या करना है। यह उनके लिये सबसे अहम सबक है, हम दूसरे लोगों के लिये रुके रहें, जो हमसे बेहतर प्रशिक्षित हैं, कि वे हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करें। विशेषज्ञ सभी महत्त्वपूर्ण बातों का चयन करता है, केवल मैं स्वयं – शिक्षक तय कर सकता है कि मेरे विद्यार्थियों को क्या पढ़ना चाहिये, या केवल वे लोग जो मुझे वेतन देते हैं ऐसे निर्णय ले सकते हैं जिन्हें में बाद में लागू करता हूँ। यदि मुझसे कहा जाए कि क्रमविकास सत्य है, सिद्धांत नहीं, मैं इस आदेश का पालन करते हुए इसे हुबहू आगे बढ़ा देता हूँ, उन्हें दंडित करता हूँ जो वैसा नहीं सोचते जैसा मुझे कहा गया है कि मैं उन्हें बताऊँ। बच्चे क्या सोचेंगे इसे नियंत्रित करने का अधिकार मेरे लिये सफल छात्रों को असफल छात्रों से पृथक करना आसान बना देता है।

सफल छात्र वैसा ही चिंतन करते हैं जैसा उन्हें मैं करने को कहता हूँ, वे कम से कम विरोध करते हैं तथा उत्साह को शिष्ट ढंग से प्रदर्शित करते हैं। लाखों बातों में, जिनके अध्ययन का मूल्य है, मैं यह तय करता हूँ कि वे कौन सी हैं, जिनके लिये हमारे पास समय है। हालाँकि वास्तविकता यह है कि इसका निर्णय मेरे चेहरा विहीन नियोक्ता करते हैं। विकल्प उनके हैं – मैं क्यों बहस करूँ? उत्सुकता की मेरे काम में कोई खास जगह नहीं है, केवल आज्ञापालन।

निश्चित ही *खराब* बच्चे इससे लड़ते हैं, यद्यपि उनके पास वह जानने की अवधारणा नहीं हैं कि किस बात के लिये वे लड़ रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं – अपने लिए स्वयं फैसला करने हेतु कि वे क्या सीखेंगे और कब सीखेंगे? हम ऐसा होने की अनुमति कैसे दे सकते हैं और बतौर स्कूल-शिक्षक बचे भी रहें ? सौभाग्य से ऐसी जाँची-परखी प्रक्रियाएँ हैं जिनसे उन लोगों के संकल्प को तोड़ा जा सकता है जो विरोध करते हैं। पर यह स्वाभाविक रूप से ज्यादा कठिन है, यदि बच्चों के माननीय अभिभावक हों, जो

उनकी सहायता के लिये आगे आएँ। परंतु ऐसा बिरले ही कभी होता है, *भले ही* स्कूल की ख्याति कितनी भी खराब क्यों न हो। मैं आज तक किसी ऐसे मध्यवर्गीय अभिभावक से नहीं मिला जो मानते हो कि उनके बच्चे का स्कूल अच्छा नहीं है। इतने वर्षों के अध्यापन काल में एक भी अभिभावक ऐसा नहीं मिला। यह आश्चर्यजनक है और कदाचित इस बात का श्रेष्ठतम सबूत भी कि उन परिवारों का क्या होता है जिनके माता व पिता, जो स्वयं स्कूलों में सात सबक वाला पाठ पढ़ चुके होते हैं।

भले लोग इंतज़ार करते हैं कि कोई विशेषज्ञ उन्हें बतलाए कि वे क्या करें। ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि हमारी संपूर्ण अर्थव्यवस्था इसी पाठ को पढ़ाए जाने पर टिकी है। विचार करें कि यदि बच्चों को आश्रित रहना न सिखाया जाए तो क्या-क्या, खंड-खंड हो जाएगा: सामाजिक सेवाएँ जीवित नहीं रह पाएँगी – वे गायब हो जाएँगी, मेरे विचार से उसी ऐतिहासिक उपेक्षावस्था में चली जाएँगी जिसमें वे उदित हुई थीं। परामर्शदाता और मनोचिकित्सक भयाक्रांत होकर देखते रह जाएँगे जब मनोविकलांगों का प्रदाय बंद हो जाएगा। हर प्रकार का वाणिज्यिक मनोरंजन, जिसमें टेलीविज़न भी शामिल होगा, बिखर जाएगा जब लोग अपने खेल-तमाशे बनाना स्वयं सीख जाएँगे। रेस्तरां, तैयार भोज्य पदार्थ उद्योग और तमाम किस्मों की खान-पान सेवाएँ औंधे मुँह गिरेगी यदि लोग अपना भोजन खुद बनाने के युग में लौट आएँ, बजाए इसके कि अजनबी उनके लिये बोऐं, उखाड़ें, काटे और खाना बनाएँ। साथ ही आधुनिक कानून, चिकित्सा और यांत्रिकी का भी बड़ा भाग विलुप्त हो जाएगा और साथ ही वस्त्र उद्योग और स्कूल शिक्षण भी, बशर्ते कि साल-दर-साल हमारे स्कूलों से असहाय लोगों का प्रदाय जारी रहने की सुनिश्चितता न हो।

स्कूलों में क्रांतिकारी सुधार के पक्ष में मतदान हेतु जल्दी न करें, यदि आप चाहते हैं कि आपको वेतन का चेक मिलता रहे। हमने ऐसी जीवन-शैली बना ली है जो ऐसे लोगों पर आश्रित हैं, जो वही करते हैं जो उनसे करने को कहा जाए, क्योंकि वे खुद नहीं जानते हैं कि *उन्हें* क्या करना चाहिये यह स्वयं से कैसे कहा जाता है। यह सबसे बड़े पाठों में से एक है, जो मैं पढ़ाता हूँ।

6. *काम चलाऊ आत्म-सम्मान*

छठा पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है काम-चलाऊ या अस्थायी आत्मसम्मान। यदि कभी आपका सामना ऐसे बच्चों से हुआ हो जिनके अभिभावकों ने उन्हें यह विश्वास दिला दिया हो कि वे जो भी करेंगे उसके बावजूद उन्हें प्यार किया जाएगा, तो आप समझ पाए होंगे कि आत्म-सम्मान की भावना का अनुकूलन करना कितना मुश्किल है। हमारा संसार आत्मविश्वासी लोगों की बाढ़ को अधिक समय के लिये नहीं झेल पाएगा, अस्तु मैं पढ़ाता हूँ कि बच्चों का आत्मसम्मान विशेषज्ञ के मत पर निर्भर होना चाहिये। मेरे शिष्यों का निरंतर मूल्यांकन और आकलन होता रहता है।

हर माह एक आकर्षक रिपोर्ट, छात्र के घर पर भेजी जाती है, जिसका आशय यह रहता है कि एक प्रतिशत बिंदु तक बच्चे के अभिभावक उस पर अपनी सहमति व्यक्त करें तथा वे जान सकें कि उन्हें अपने बच्चे से कितना असंतुष्ट होना चाहिये। ''अच्छी'' स्कूल व्यवस्था का पर्यावरण-विज्ञान असंतोष को अक्षुण्ण बनाए रखने पर आश्रित होता है, जैसे वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था भी उसी खाद पर निर्भर होती है। कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि इन गणितीय रिर्पोटों को बनाने में या विचार को प्रकट करने में कितना कम समय लगता है। इन वस्तुनिष्ठ दिखाई देने वाले दस्तावेजों का संचित भार एक ऐसा पार्श्वदृश्य स्थापित करता है जो बच्चों को मजबूर करता है कि वे स्वयं और स्वयं के भविष्य के विषय में कुछ ऐसे सुनिश्चित निर्णयों तक पहुँचे जो अजनबियों के औपचारिक आकलन पर आधारित हों। आत्म-मूल्यांकन जो कि प्रत्येक बड़ी दार्शनिक पद्धति का मूल रहा है, उसे कोई घटक नहीं माना जाता। रिपोर्ट कार्ड, श्रेणी और टेस्ट का सबक बस इतना है कि बच्चे कभी अपने आप पर या अपने अभिभावकों पर विश्वास न करें बल्कि प्रमाणित अधिकारियों के मूल्यांकन पर भरोसा करें। लोगों को यह बतलाना आवश्यक है कि उनका मूल्य क्या है।

7. *कोई छिपा नहीं सकता*

सातवाँ पाठ जो मैं पढ़ाता हूँ वह है कि कोई कुछ छिपा नहीं सकता। मैं छात्रों को पढ़ाता हूँ कि उन पर सदैव नज़र रखी जाती है, कि प्रत्येक पर मैं या मेरे सहकर्मी

निगरानी रखते हैं। बच्चों के लिये कोई निजी स्थान नहीं है, कोई निजी समय नहीं है। एक से दूसरी कक्षा में जाने के लिये मात्र तीन सौ सेकंड मिलते हैं जिससे कि गड्ड-मड्ड, भाईचारा अथवा दोस्ती नीचले स्तर पर रहे। बच्चों को सिखाया जाता है कि वे एक-दूसरे के भेद खोलें – यहाँ तक कि अपने अभिभावकों के भी। मैं अभिभावकों को प्रोत्साहित करता हूँ कि वे अपने ही बच्चों के जिद्दीपने की रिपोर्ट दर्ज कराएँ। जिस परिवार को अपने ही घर में चोरी, मुखबरी करने हेतु प्रशिक्षित किया जाए, वह किसी खतरनाक भेद को नहीं छिपा सकेगा।

मैं उन्हें एक प्रकार के विस्तारित स्कूलिंग का कार्यभार देता हूँ जिसे ''होमवर्क'' कहते हैं ताकि निगरानी का प्रभाव (यदि स्वयं निगरानी नहीं) निजी घरों तक पहुँच जाए, जहाँ छात्र ऐसा न करने पर अपने समय का उपयोग कुछ ऐसा सीखने में करने लगेंगे जो माता-पिता द्वारा अधिकृत न हो, खोज के जरिये या पड़ोस के किसी बुद्धिमानी व्यक्ति का रंगरूट बन कर। स्कूलिंग के प्रति निष्ठावान न होने का विचार एक ऐसा शैतान है जो खाली हाथों के लिये कोई न कोई काम ढूँढ निकालने को सदैव तत्पर रहता है।

सतत चौकसी और निजत्व न देने का अर्थ है कि किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। निगरानी प्रभावशाली विचारकों का अत्यावश्यक और समर्पित केंद्रीय उपचार रहा है जो *द रिपब्लिक, द सिटी आफ गॉड, द इन्स्टिट्यूट ऑफ द क्रिश्चियन रिलीजन, न्यू एटलांटिस, लीविएथान* व अन्य अनेक स्थानों में मुखरित हुआ है। सभी नि:संतान लोग जिन्होंने ये ग्रंथ लिखे ने एक ही बात का पक्ष लिया कि बच्चों पर सख्त नज़र रखी जानी चाहिये, अगर आप समाज को कठोर केंद्रीय सत्ता के अधीन रखना चाहते हैं। यदि आप उन्हें वर्दीधारी मार्चिंग बैंड में नहीं रखेंगे तो वे किसी निज़ी ड्रमर का अनुसरण करने लगेंगे।

II

यह अनिवार्य शासकीय एकाधिकार वाले ढेरों स्कूली प्रणाली की महान विजय ही है कि मेरे सर्वश्रेष्ठ सहकर्मी शिक्षकों और मेरे सर्वश्रेष्ठ छात्र अभिभावकों में से सिर्फ कुछ गिने चुने ही किसी कार्य को अन्य प्रकार से करने की कल्पना कर सकते हैं। ''बच्चों को

पढ़ना-लिखना आना चाहिये कि नहीं ?'' ''उन्हें जोड़-घटाना आना चाहिए कि नहीं ?'' ''उन्हें आज्ञाकारी बनना सीखना चाहिये यदि वे कोई नौकरी पाने की इच्छा रखते हैं।''

सिर्फ कुछ ही जीवनकालों के पहले, संयुक्त राज्य में हर बात सर्वथा भिन्न थी। मौलिकता और विविधता सामान्य मुद्रा थी; कठोर अनुशासन से मुक्त हमारी स्वतंत्रता ने हमें दुनिया का आश्चर्य बना दिया था; सामाजिक वर्ग की सीमाओं को लाँघना अपेक्षाकृत सरल था; हमारे नागरिक आत्म-विश्वास से लबरेज थे, आविष्कारी और अपने आपके लिये स्वतंत्र रूप से बहुत कुछ कर सकते थे और खुद के लिये सोच सकते थे। हम अमेरिकी, हम अपने आप में कुछ विशेष थे, हमारे जीवन के हर पहलु पर सरकार की गिद्धदृष्टि नहीं रहती थी, न संस्थात्मक और सामाजिक एजेंसियाँ हमें बतलाती थीं कि हम क्या सोचें और क्या अनुभव करें। हम बतौर व्यक्ति, बतौर अमेरिकी कुछ खास थे।

परंतु गृहयुद्ध के ठीक बाद से हमारा समाज संयुक्त राज्य में केंद्रीय सत्ता के अधीन रहा है, और ऐसे समाज के लिये अनिर्वाय शिक्षा – शासकीय एकाधिकार वाली स्कूल व्यवस्था की आवश्यकता उस केन्द्रीय सत्ता को बनाए रखने के लिये होती है। इस उन्नति के पहले स्कूल व्यवस्था कहीं भी इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं थीं। थी जरूर, पर उतनी ही जितनी किसी व्यक्ति को उसकी *आवश्यकता* थी। लोग लिखना, पढ़ना, गुणा-भाग करना सीखते थे – जो ठीक था ; कुछ ऐसे भी विषय हैं जो अमेरिकी क्रांति के समय साक्षरता का संकेत देते हैं, कम से कम पूर्वी तट पर उनके लिये जो दास नहीं थे। थामस पेन के *''कॉमनसेंस''* की 6,00,000 प्रतियाँ 30,00,000 की आबादी में बिकी थीं, जिसमें से बीस फीसद गुलाम थे और पचास फीसद अनुबंधित नौकर।

क्या उपनिवेशवादी प्रतिभा संपन्न थे ? नहीं, वास्तविकता यह है कि पढ़ना, लिखना और गणित सीखने में मात्र सौ घंटे लगते हैं, बशर्ते की कोई सीखने के लिये इच्छुक और उत्सुक है। पेंच यह है कि तब तक इंतज़ार करें जब तक कोई सवाल पूछे और तब तेज़ी से सिखाएँ, जब तक उसका मन करे। लाखों लोग स्वयं को ये चीजें सिखाते हैं – यह विशेष कठिन नहीं है। 1850 की किसी पाँचवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक – गणित या वाक्पटुता (भाषा अध्ययन) की देखें तो आपको पता चलेगा कि पाठ जो तब पढ़ाए जाते थे वे आज के कॉलेज स्तर के थे। ''मौलिक कुशलता''

के अभ्यास की चीख जो लगातार सुनाई पड़ती है वह धूम्रावरण है जिसकी आड़ में स्कूल बच्चों को बारह वर्षों के लिये रोक देते हैं और उन्हें वे सात पाठ पढ़ाते हैं जिनका उल्लेख में कर चुका हूँ।

समाज जो गृहयुद्ध के ठीक पहले से लगातार केंद्रीय नियंत्रण के शिकंजे में कसता गया है और जिस प्रकार का जीवन हम जी रहे हैं उसमें परिलक्षित है – वस्त्र जो हम पहनते हैं, भोजन जो हम करते हैं और उन हरे राजमार्ग संकेतों में इस छोर से उस छोर तक व्यक्त हो रहा है और ये सब नियंत्रण के उत्पाद हैं। और, मेरे मतानुसार एक व्यापक रोग के रूप में नशीले पदार्थों की संक्रामकता, आत्महत्याओं, तलाकों, हिंसा और क्रूरता तथा यूनाइटेड स्टेट्स में वर्ग को जाति में बदलने की कठोरता में, हमारी जिंदगियों के अमानवीकरण में, व्यक्ति, परिवार तथा सामुदायिक महत्त्व को कम करने में व्यक्त होता है – कमतरीकरण जो केंद्रीय नियंत्रण के आगे चलता है। अपरिहार्य रूप से बड़े अनिवार्य संस्थान ज्यादा से ज्यादा चाहते हैं जब तक कि उन्हें देने के लिये कुछ भी शेष न बचे। स्कूल हमारे शिशुओं को सामुदायिक जीवन में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने की संभाव्यता से दूर ले जाता है – वस्तुत: वह बच्चों की शिक्षा को प्रमाणीकृत विशेषज्ञों के हाथों में देकर समुदायों को तबाह करता है – और ऐसा करके वह यह सुनिश्चित करता है कि हमारे बच्चे बड़े होकर, संपूर्ण मानव नहीं बनेंगे। अरस्तू ने कहा था कि सामुदायिक जीवन में पूर्ण सक्रिय भूमिका निभाए बिना कोई परिपूर्ण मानव बनने की आशा नहीं कर सकता। नि:संदेह वो सही था। अगली दफा जब आप किसी स्कूल या वृद्धाश्रम के निकट से गुजरें तो आपको इसका प्रदर्शन नज़र आएगा।

स्कूल, जैसा कि उसे बनाया गया था, उस सामाजिक यांत्रिकी की सहायक प्रणाली का प्रादर्श (मॉडल) था जो अधिकांश लोगों को उस पिरामिड के निचले पत्थरों की हैसियत में डाल देता है, जो जैसे-जैसे ऊपर उठता है, पतला होता जाता है और नियंत्रण बिंदु पर जाकर समाप्त होता है। स्कूल एक चालाकी भरा तंत्र है जो पिरामिडनुमा सामाजिक व्यवस्था को अवश्यंभावी रूप से प्रदर्शित करता है, हालाँकि ऐसा तर्क अमेरिकी क्रांति के प्रति विश्वासघात है। उपनिवेश के दिनों से लोकतंत्र के

युग तक हमारे पास कोई उल्लेखनीय स्कूल नहीं थे – उदाहरण के लिये बेंजामिन फ्रेंकलीन की *''ऑटोबायोग्राफी''* पढ़िये, जिसके पास स्कूल में बर्बाद करने के लिये समय नहीं था – किंतु फिर भी लोकतंत्र के लक्षण दृष्टिगत होने लगे थे। हमने उन शुभ लक्षणों की ओर पीठ फेर ली और मिस्र के प्राचीन फराहवादी सपने को आकार देने लगे: हर किसी को अनिवार्य रूपेण अधीन करना। यही वह भेद था जिसे प्लेटो ने *'द रिपब्लिक'* में अनिच्छापूर्वक संचारित किया जब ग्लाउकान और एडीमेंटस ने सुकरात से मानव के जीवन पर राज्य के संपूर्ण नियंत्रण की योजना को धमका कर प्राप्त किया था, योजना जो ऐसे समाज को बनाए रखने हेतु जरूरी थी जिसमें कुछ लोगों को उनके हिस्से से अधिक मिले। ''मैं बताता हूँ'', सुकरात कहता है ''ऐसे ज्वरग्रस्त समाज को कैसे बनाया जा सकता है, किंतु तुम्हें वह पसंद नहीं आएगा जो मैं कहने जा रहा हूँ।'' और इस प्रकार सात पाठ वाले स्कूल की पहली रूपरेखा तैयार की गई।

वर्तमान में जो बहस इस बाबत चल रही है कि क्या हमारा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम होना चाहिए, महज एक ढोंग है। हमारे पास पहले से ही एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम है जो सात पाठों के अंदर बंद है, जिसे मैंने रेखांकित किया है। ऐसा पाठ्यक्रम शारीरिक, नैतिक और बौद्धिक पक्षाघात उत्पन्न करता है और कोई भी संतोषप्रद पाठ्यक्रम इसके जघन्य प्रभावों को उलटने में पर्याप्त नहीं होगा। अभी जो हमारे राष्ट्रीय भावोन्माद में गिरते जा रहे शैक्षणिक प्रदर्शन पर बहस छिड़ी हुई है उसमें एक बात की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। स्कूल वही पढ़ाते हैं जो उनके द्वारा पढ़ाए जाने का उद्देश्य है और यह काम वे बखूबी कर रहे हैं; किस तरह अच्छे मिस्त्री बने और पिरामिड में अपने स्थान पर बने रहे।

III

इसमें से कुछ भी अपरिहार्य नहीं है। कुछ भी ऐसा नहीं जो उखाड़ कर फेंका नहीं जा सकता। हमारे पास विकल्प हैं कि किस प्रकार हम युवा पीढ़ी का पालन-पोषण करें : कोई एक सही रास्ता नहीं है। यदि हम पिरामिडीय भ्रांति की शक्ति को तोड़ें तो हम उसे देख सकेंगे। यहाँ ऐसी कोई जीवन-मृत्यु की अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा नहीं है जो हमारे राष्ट्रीय

अस्तित्त्व को चुनौती दे रही हो। इस विचार के विषय में सोचना कठिन भले ही हो, हमें उस पर विश्वास करना है, क्योंकि मीडिया का सतत अभियान उस विचार के विरुद्ध चल रहा है। भौतिक दृष्टि से प्रत्येक महत्त्वपूर्ण चीज़ों में हमारा राष्ट्र आत्म-निर्भर है – ऊर्जा के मामले में भी। मैं महसूस करता हूँ कि यह विचार राजनैतिक अर्थशास्त्रियों की सर्वाधिक फैशनप्रिय सोच के खिलाफ चलता है, लेकिन हमारी अर्थव्यवस्था का ''गहन रूपांतर'', जिस पर ये लोग बाते करते हैं वह न तो अपरिहार्य है और न ही ऐसा जिसे पलटा न जा सके।

वैश्विक अर्थव्यवस्था जनता के लिऐ अर्थयुक्त कार्य, सामर्थ्य के अंदर मकान, शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति, पर्याप्त स्वास्थ्य सुरक्षा, स्वच्छ पर्यावरण तथा जवाबदार सरकार, सामाजिक व सांस्कृतिक पुनर्जागरण, या सरल न्याय पर चर्चा नहीं करती। सारी वैश्विक महत्त्वाकांक्षाएँ उत्पादकता की परिभाषा पर आधारित हैं तथा अच्छा जीवन सामान्य मानवीय वास्तविकता से इतना प्रतिकूल है कि मैं पूरी तरह से मानता हूँ कि वह दोषपूर्ण है। और अधिकांश लोग मुझसे सहमत होंगे यदि वे किसी विकल्प की कल्पना कर सकें। यदि हम उस दर्शन पर पुन: अपनी पकड़ बना सकें, जो अर्थ को वहाँ रखती है जहाँ वह वास्तव में पाया जाता है, तो हम उसे शायद देख पाएँ – परिवारों में, मित्रों में, बदलती ऋतुओं में, प्रकृति में, सरल समारोहों और अनुष्ठानों में, उत्सुकता, उदारता, सहृदयता, दयालुता और दूसरों की सेवा में, स्वतंत्रता और निजता में, उन सब नि:शुल्क एवं सस्ती वस्तुओं में, जिसके अंतर्गत असली परिवार, असली दोस्त और असली बिरादरी बनाई जाती हैं – और तब हम इतने आत्म-सक्षम होंगे कि हमें उस भौतिक ''पर्याप्तता'' की ज़रूरत ही नहीं होगी जिसकी पैरवी हमारे वैश्विक ''विशेषज्ञ'' करते हुए कहते हैं कि हमें उनकी फिक्र करनी चाहिये।

ये भयानक जगहें जिन्हें हम 'स्कूल' कहते हैं, कहाँ से आई ? काम चलाऊ तो हमारे पास हमेशा से ही अनेक रूपों में थे, पलने-बढ़ने के लिये साधारण तौर पर अनुलग्नक के रूप में। परंतु ''आधुनिक स्कूल प्रणाली'' जैसी की हम देख रहे हैं, वह 1848 और 1919 के दो ''लाल संत्रासों'' की उपज है, जब ताकतवर स्वार्थी तत्वों में डर समा गया कि हमारे अपने औद्योगिक गरीब बगावत न कर बैठें। कुछ हद तक संपूर्ण स्कूलिंग का अविर्भाव इसलिए हुआ क्योंकि पुरानी लीक के ''अमेरिकी'' परिवार 1840 के दशक

के सेल्विक, स्लाविक और लातिनी आदिवासियों की आदिम संस्कृति को देखकर भयभीत हो गए और उनके मन में कैथोलिक धर्म के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न हुई, जिसे वे अपने साथ लाए थे। बिलाशक तीसरा घटक जिसकी वजह से ''स्कूल'' कहलाने वाली जेलों के निर्माण हुआ, अफ्रीकी-अमेरिकी आंदोलन था जो कि गृहयुद्ध के पीछे-पीछे समाज में प्रविष्ट हुआ ।

एक बार फिर स्कूलिंग के सात पाठों की याद ताज़ा करें: भ्रम, वर्ग स्थिति, तटस्थता, भावनात्मकता तथा बौद्धिक निर्भरता, सशर्त आत्म-सम्मान और गुलामी। ये सभी पाठ स्थायी निम्नवर्गों के मुख्य प्रशिक्षण हैं, लोग जिन्हें सदा के लिये अपनी प्रतिभा के केंद्र को ढूँढने से वंचित कर दिया गया है। और समय के साथ इस प्रशिक्षण को उसके मूल उद्देश्य, गरीबों को संचालित करना से शिथिल कर दिया गया है। क्योंकि 1920 के बाद से स्कूल नौकरशाही की वृद्धि के साथ-साथ, कम दिखाई देने वाले उद्योगों के झुंड की भी वृद्धि हुई है जो स्कूलिंग से उसी प्रकार लाभान्वित होते हैं, ने इस संस्था की मूल पकड़ को इतना विस्तारित कर दिया है कि उसने मध्यवर्ग के बेटो-बेटियों को भी लपेट लिया है।

इसलिये इसमें क्या आश्चर्य कि सुकरात इस आरोप से क्रुद्ध हो गया था कि वे पढ़ाने के लिये पैसा लेते हैं ? उस समय में भी दार्शनिकों ने स्पष्ट रूप से यह देख लिया था कि शिक्षा का पेशेवरीकरण किस अवश्यंभावी दिशा का रुख करेगा, यह कि शिक्षा के कार्य को पहले ही खरीद लिया जाएगा जो कि एक स्वस्थ समाज में हर किसी का होता है।

जैसे पाठ मैं हर दिन पढ़ाता हूँ उसे देख विस्मय नहीं होना चाहिये कि हमारे समक्ष एक वास्तविक राष्ट्रीय संकट है, जिसकी प्रकृति उससे एकदम भिन्न है जिसकी घोषणा राष्ट्रीय मीडिया कर रहा है। युवा, वयस्कों के संसार के प्रति, भविष्य के प्रति, बल्कि लगभग हर बात के प्रति उदासीन हैं सिवाय खिलौनों और हिंसा की दिशा में परिवर्तन को छोड़ कर। अमीर हो या गरीब, इक्कीसवीं सदी से मुखातिब स्कूली बच्चे किसी भी चीज पर ज्यादा समय तक ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते, उन्हें बीते हुए या आने वाले समय की अच्छी समझ नहीं है। उन्हें घनिष्ठता के प्रति संदेह है जैसे वे तलाक के बच्चे हों (क्योंकि हमने उन्हें महत्त्वपूर्ण अभिभावकीय स्नेह से दूर कर दिया है); वे एकान्त से

घृणा करते हैं; वे क्रूर, पदार्थवादी, आश्रित, निष्क्रिय, हिंसक और दब्बू साबित होते हैं – जब उनके सामने कुछ अप्रत्याशित घटित होता है, वे व्याकुलता के आदी हो चुके हैं।

बाल्यावस्था की सभी गौण प्रवृत्तियों को स्कूलिंग द्वारा बेढंगे तरीके से पोषित और बढ़ा-चढ़ा कर उनके गुप्त पाठ्यक्रम के माध्यम से प्रभावी बताया जाता है। यह प्रभावी व्यक्तित्व के विकास को बाधित करता है। सच तो यह है कि बच्चों के भय, स्वार्थपरिता और अनुभवहीनता का शोषण किये बगैर हमारे स्कूल जीवित रह ही नहीं सकते और न ही मैं उसका प्रमाणित शिक्षक रह सकता हूँ। कोई भी सामान्य स्कूल जिसने तर्क विद्या और स्वत: शोध जैसे समीक्षात्मक सोच-विचार करने के औजारों या अन्य विधियों के उपयोग से पढ़ाने का साहस दिखाया, वह दीर्घकाल तक टीक नहीं पाएगा और टुकड़ों में बिखर जाएगा। हमारे धर्म-निरपेक्ष समाज में स्कूल चर्च का प्रतिस्थापन बन गया है, और चर्च की भाँति उसे भी आस्था पर आधारित शिक्षा की चाहना है।

यही वह समय है कि हम इस सत्य को स्वीकार करें कि संस्थात्मक स्कूली शिक्षा बच्चों के लिये विध्वंसकारी है। कोई भी सप्त-पाठीय पाठ्यक्रम से अछूता नहीं बच सकता – प्रशिक्षक भी नहीं। यह प्रणाली पूर्णत: और गंभीरता से शिक्षा-विरोधी है। कोई भी कारीगर उसे ठीक नहीं कर सकता। मानवीय मामलों की महान विडंबनाओं में से एक यह है कि स्कूलों के लिये जिस विराट पुनर्विचार की आवश्यकता है, उस पर इतनी कम लागत आएगी जितनी हम फिलहाल स्कूलों पर खर्च कर रहे हैं, किंतु शक्तिशाली हित अपने स्वार्थ के चलते ऐसा होने देने का जोखिम नहीं उठा सकते। आपको ज्ञात होना चाहिये कि जिस व्यापार में मैं हूँ वह नौकरी देने वाली योजना *(जॉब्स प्रोजेक्ट)* है, और करारों के लिये एक एजेंसी। हम कार्य की सीमा को घटाकर पैसा बचाना गवारा नहीं कर सकते या उन उत्पादों में विविधता लाकर जिन्हें हम (संस्थागत स्कूल) बेचते हैं, कि बच्चे उचित रीति से पले-बढ़ें। यही संस्थागत स्कूली व्यवस्था का *लौह नियम* है – यह एक व्यापार है जो न तो सामान्य लेखा प्रक्रिया के अधीन है और न ही प्रतिस्पर्धा की तर्क-संगत धुरी के।

सार्वजनिक स्कूल पद्धति में यदि किसी रूप में मुक्त बाजार व्यवस्था हो, तो सवालों का जवाब मिल सकता है, एक मुक्त बाजार पारिवारिक स्कूल, छोटे उद्यमशील और धार्मिक स्कूल तथा दस्तकारी स्कूल या खेत स्कूल – जो बड़ी संख्या में शासकीय

स्कूलों से प्रतिद्वंद्विता करें। मैं स्कूल पद्धति में मुक्त बाज़ार की बात उसी तरह कर रहा हूँ जैसी की देश में गृहयुद्ध तक थी, जिसमें *छात्र खुद पहल करते हुए ऐसी शिक्षा का चयन करता था* जो उसके योग्य हो, फिर चाहे वह स्व-शिक्षा ही क्यों न हो। इससे बेंजामिन फ्रेंकलिन व्यथित नहीं हुए, जो मैं देख सकता हूँ। ये विकल्प अब अति लघु रूप में अस्तित्वमान है, सुदृढ़ और जोशीले अतीत का शानदार अवशेष, किंतु ये केवल साधन संपन्न, हिम्मतवालों, भाग्यशालियों और धनवानों के लिये ही उपलब्ध हैं। इन बेहतर रास्तों में से किसी एक का निर्धनों के टूटे-फूटे परिवारों के लिये, या शहरी मध्यवर्ग को मिलने वाली मुफ्त सुविधाओं पर पलने वाले विस्मित मेजबानों के लिये खुलने की लगभग असंभव संभावना यही संदेश देती है कि *सात पाठ वाले स्कूलों की भीषण दुर्घटना की संभाव्यता में वृद्धि होगी बशर्ते कि हम कुछ निर्भीक और निर्णायक कदम उठाकर शासकीय एकाधिकार वाली स्कूल प्रणाली की अव्यवस्था को हटाने का प्रयत्न करें।*

अपने जीवन का वयस्क काल स्कूलों में अध्यापन करते हुए व्यतीत कर लेने के बाद, मैं मानता हूँ कि बहुत ही बड़े पैमाने पर दी जाने वाली शिक्षा की *पद्धति* ही इसकी वास्तविक विषय सूची है। यह सोचकर धोखा न खाइये कि अच्छा पाठ्यक्रम, अच्छा उपकरण या अच्छे शिक्षक आपके पुत्र या पुत्री की शिक्षा का फैसला करने में महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। जितने भी रोगोपचार की विधियों पर हमने विचार किया है वे भारी मात्रा में आते हैं क्योंकि स्कूल के पाठ शिशुओं को अपने आप से और अपने परिवार से महत्त्वपूर्ण भेंट करने से रोकते हैं जिससे कि वे आत्मप्रेरणा, संरक्षण, आत्मविश्वास, साहस, प्रतिष्ठा, एवं प्रेम के सबक न सीख सकें – और दूसरों की सेवा भी, जो परिवार एवं बिरादरी का विशेष पाठ है।

तीस वर्ष पूर्व ये पाठ फिर भी स्कूल से *बचे* हुए समय में सीखे जा सकते थे। किंतु टेलीविज़न ने अधिकांश समय उनसे छीन लिया है और दो-आय या एकल अभिभावक परिवारों में जो तनाव देखने में आता है उसने उसका बड़ा भाग उदरस्थ कर लिया है जिसे कभी परिवार का समय कहा जाता था। हमारे बच्चों के पास बढ़कर एक पूर्ण मानव बनने के लिये वक्त ही नहीं है, केवल एक पतली-सी परत वाली बंजर भूमि इसके लिये रह गई है।

भविष्य हमारी संस्कृति पर तेजी से बरस रहा है जिसका आग्रह है कि हम सब अभौतिक, आत्मिक अनुभव की बुद्धि को आत्मसात करें, भविष्य जो जिंदा रहने की कीमत माँगेगा कि हम प्राकृतिक जीवन की ओर जाएँ जो भौतिक दृष्टि से कहीं अधिक मितव्ययी भी है। स्कूल एक बारह वर्ष का कारावास है, जहाँ के पाठ्यक्रम में केवल बुरी आदतें ही सीखी जा सकती हैं। मैं स्कूल पढ़ाता हूँ, और ये करते हुए पुरस्कार जीतता हूँ। मुझे ये मालूम होना चाहिये।

अध्याय - 2

मनोविकृति स्कूल

यह व्याख्यान लेखक द्वारा 31 जनवरी 1990 को, न्यू यॉर्क राज्य की सीनेट द्वारा, वर्ष के न्यू यॉर्क सिटी शिक्षक नामित किये जाने के अवसर पर दिया गया था।

मैं इस पुरस्कार को उन श्रेष्ठ शिक्षकों की ओर से स्वीकार करता हूँ जिन्हें मैं वर्षों से जानता हूँ और जिन्होंने बच्चों के साथ अपने व्यवहार को सम्माननीय बनाने के लिये संघर्ष किया है, स्त्री व पुरुष जो सदैव इस बात पर प्रश्न करते रहे कि 'शिक्षा' का क्या अर्थ होना चाहिये और इसे परिभाषित व पुनर्परिभाषित करने में हमेशा लगे रहे। वर्ष का शिक्षक, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक नहीं होता (ऐसे लोग बहुत शांत होते हैं और उन्हें सरलता से ढूँढा नहीं जा सकता), परंतु वे उन थोड़े लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन बच्चों की सेवा में व्यतीत कर देते हैं। यह उन्हीं का पुरस्कार है, और मेरा भी।

I

हम बड़े भारी स्कूली संकट के दौर से गुजर रहे हैं जिसका संबंध उससे भी बड़े सामाजिक संकट से है। हमारा देश उन्नीस औद्योगिक राष्ट्रों में, पढ़ने-लिखने और गणित के

मामले में सबसे निचली पायदान पर है। एकदम तले पर ! विश्व की नशीली अर्थव्यवस्था, इस माल के हमारे द्वारा उपभोग पर आश्रित है; अगर हम इतने मुलम्मा चढ़े सपनों को खरीदना बंद कर दें, तो शिक्षा का व्यापार औंधे मुँह आ गिरेगा – और स्कूल इसके मुख्य विक्रय स्थल हैं। हमारे यहाँ किशोरों में आत्महत्या की दर दुनिया में सर्वाधिक है, और आत्महत्या करने वाले बच्चे ज्यादातर धनाढ्य वर्ग के हैं, गरीब घरों के नहीं। मैनहटन में नए विवाहों में से सत्तर प्रतिशत पाँच वर्ष तक भी टिक नहीं पाते। अस्तु नि:संदेह कुछ न कुछ गलत तो है।

यह महासंकट जिसे हम अपने स्कूलों में देख रहे हैं वह उससे भी बड़े समुदाय में व्याप्त सामाजिक संकट से जुड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमने अपनी पहचान ही खो दी है। जिस तरह से आज बच्चों और वृद्धों को दुनिया के कार्य व्यापार से दूर एक बाड़े में बंद कर दिया जाता है और उसमें ताला जड़ दिया जाता है – इस सीमा तक जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। आजकल उनसे कोई बात तक नहीं करता और बच्चों तथा बुजुर्गों के दैनिक जीवन में परस्पर मेल-जोल के बगैर, न तो समुदाय का कोई भविष्य है और न ही अतीत, केवल एक अटूट वर्तमान है। वस्तुत: 'समुदाय' शब्द, जिस प्रकार हम एक-दूसरे से व्यवहार करते हैं, उस पर लागू ही नहीं होता। हम *'संजाल'* (नेटवर्क) में रहते हैं, समुदायों में नहीं और हर कोई जिसे मैं जानता हूँ, इसी कारण से एकाकी है। इस त्रासदी का प्रमुख कलाकर स्कूल है, उसी प्रकार जिस प्रकार यह समाज के विभिन्न वर्गों के बीच की खाई को बढ़ाने में कोई किरदार है। स्कूल का छँटनी यंत्र के समान उपयोग करके हम एक ऐसी जाति व्यवस्था की रचना कर रहे हैं, अछूतों से भरी हुई, जो भूमिगत रेलों में भटकते हुए भीख माँगते हैं और सड़कों पर सोते हैं।

तीस वर्षों के अपने अध्यापन काल में मैंने सम्मोहित करने वाली घटनाएँ देखी हैं : स्कूल और स्कूल प्रणाली इस ग्रह के महान उद्यम के लिये असंगत हैं। अब कोई यह विश्वास नहीं करता है कि वैज्ञानिकों को विज्ञान की कक्षाओं में प्रशिक्षित किया जाता है या राजनीतिज्ञों को नागरिकशास्त्र की कक्षाओं में या कवियों को अंग्रेजी की कक्षाओं में प्रशिक्षित किया जाता है। सच्चाई तो यह है कि स्कूल इस बात के अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ाते कि कैसे सिर झुका कर केवल आदेशों का पालन करना चाहिये। मेरे लिये

यह महान रहस्य है क्योंकि हज़ारों उदार और फिक्रमंद लोग स्कूल में बतौर शिक्षक, सहायक और प्रबंधक काम करते हैं लेकिन संस्थान का अव्यवहारिक तर्क उनके व्यक्तिगत योगदानों पर भारी पड़ जाता है। यद्यपि शिक्षक चिंता करते हैं और बहुत कड़ी मेहनत करते हैं परन्तु संस्थान मनोविकार-ग्रस्त हैं – उसमें कोई आत्मा नहीं है। वहाँ एक घंटी बजती है और एक किशोर आधी लिखी कविता को बीच में छोड़कर, अपनी कापी-किताब को समेट कर, दूसरी कोठरी में चला जाता है, जहाँ उसे कंठस्थ करना है कि मनुष्य और बंदरों के पूर्वज एक थे।

II

हमारी अनिवार्य शिक्षा पद्धति का आविष्कार मेसाच्यूएट्स राज्य ने 1850 के आस-पास किया था। इसका विरोध हुआ – कभी-कभी बंदूकों द्वारा – और वह भी मेसाच्यूएट्स की लगभग अस्सी फीसद आबादी द्वारा। विरोधियों की अंतिम चौकी जो केपकाड के घुड़साल में थी, ने अपन बच्चों को 1880 के दशक तक समर्पण नहीं करने दिया था, जब क्षेत्र को सेना द्वारा कब्जे में लिया गया और बच्चों को सैनिकों के पहरे में स्कूल भेजा गया।

सीनेटर टेड केनेडी के कार्यालय ने कुछ ही समय पूर्व एक पत्र जारी करते हुए बताया था कि शिक्षा को अनिवार्य करने के *पहले* राज्य की साक्षरता दर अट्ठानवे प्रतिशत थी और जो बाद में इक्यानवे प्रतिशत से ऊपर कभी नहीं गई, जितनी वह आज 1990 में है।

एक और विलक्षण बात विचारणीय है : घर पर पढ़ाने का आंदोलन धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ इस मुकाम पर आ पहुँचा है कि आज पाँच लाख बच्चों को संपूर्ण शिक्षा उनके अभिभावकों द्वारा ही दी जा रही है। गत माह शिक्षा प्रेस ने एक विस्मयकारी खबर दी कि घरों में शिक्षित बच्चों की सोचने की योग्यता, उनके औपचारिक रूप से शिक्षित हमउम्र बच्चों से पाँच से सात वर्ष आगे है।

III

मुझे नहीं लगता कि हमें स्कूलों से निकट भविष्य में छुटकारा मिलेगा, कम से कम मेरे जीवन काल में तो कदापि नहीं, परंतु यदि हमें तीव्र गति से बढ़ते अज्ञान के प्रलय को रोकना है, तो हमें समझना होगा कि स्कूल संस्था ''स्कूल'' तो ठीक से करती है पर ''शिक्षित'' नहीं करती और यह उसकी अंतर्निहित बनावट का दोष है। यह खराब शिक्षकों का या बहुत कम धन का दोष नहीं है। शिक्षा और स्कूलिंग का कभी भी एक ही होना नितांत असंभव है।

स्कूलों की संकल्पना होरेस मैन तथा कुछ अन्य लोगों के द्वारा की गई थी जिनका काम भारी संख्या में जनता का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन करना था। स्कूलों का काम है सूत्रों को लागू करके सूत्रवत मानवों का उत्पादन करना, जिनके विषय में भविष्यवाणी की जा सके और जिन्हें नियंत्रण में रखा जा सके।

बड़ी हद तक स्कूल यह सब करने में सफल तो हुए, किंतु उस राष्ट्रीय व्यवस्था में जो निरंतर बिखर रही है, ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्था जिसमें ''सफल लोग'' ही स्वतंत्र, स्व-आश्रित, आत्मविश्वासी तथा व्यक्तिवादी हैं (क्योंकि सामुदायिक जीवन जो निराश्रितों और दुर्बलों की रक्षा करता है, वह मर चुका है और केवल उसका नेटवर्क रह गया है), स्कूल प्रणाली के उत्पाद जैसा कि मैंने कहा अप्रासंगिक है, वैसे ही अच्छी तरह स्कूल किये गये लोग भी अप्रासंगिक हैं। वे फिल्म या रेज़र-ब्लेड बेच सकते हैं, कागजों को आगे बढ़ा सकते है, टेलीफोन पर बतिया सकते है, या बिना मतलब के टिमटिमाते कम्प्यूटर टर्मिनल को देखते बैठे रह सकते हैं, पर बतौर मनुष्य वे किसी मतलब के नहीं हैं। न स्वयं अपने लिये किसी काम के हैं न औरों के लिये।

हमारे इर्द-गिर्द जो दुर्दशा है, मैं सोचता हूँ, वह बहुत कुछ उन कारणों से उत्पन्न हुई है, जिसके विषय में पाल गुडमैन ने तीस वर्ष पूर्व कहा था कि हम बच्चों को मूर्खों की भाँति बड़ा कर रहे हैं। स्कूल व्यवस्था में किसी भी सुधार के लिये ज़रूरी है कि मूर्खताओं से निपटा जाए।

यह मूर्खतापूर्ण और जीवन विरोधी ही है कि हम उस व्यवस्था के अंग बने रहें जिसमें आपको आपकी ही आयु और सामाजिक वर्ग के लोगों के साथ कैद मैं बैठा दिया

जाए। वह व्यवस्था आपको प्रभावी ढंग से जीवन की अनंत विविधताओं और कई प्रकार की सहक्रियाओं से पृथक कर देती है; दरअसल यह आपको अपने ही अतीत व भविष्य से काट देती है और आपको सतत् वर्तमान में बांध देती है, ठीक उसी तरह जैसा टेलीविज़न करता है।

यह मूर्खतापूर्ण और जीवन विरोधी है कि घंटी की आवाज होते ही आप एक कोठरी से दूसरी कोठरी में जाएँ, अपनी प्राकृतिक युवावस्था के प्रत्येक दिन ऐसे संस्थान में, जो आपको कोई निजत्व नहीं देता अपितु आपके घर तक भी आपके पीछे लगा रहता है कि आप उसका ''होमवर्क'' करें।

आप पूछते हैं कि, ''वे पढ़ना कैसे सीखेंगे?'' और मेरा उत्तर है ''मेसाच्यूएट्स के सबक को याद करें।'' जब बच्चों को पूरा जीवन दिया जाता है, न कि आयु के अनुसार बनाए गए ग्रेडों की कोठरियों में पढ़ने, लिखने और जोड़-घटाना सरलता से करना सीखने हेतु – बशर्ते की उन चीज़ों का उस प्रकार के जीवन में कोई मतलब हो जो उन्हें आगे गुज़ारना है।

परंतु यह न भूलें कि संयुक्त राज्य में लगभग कोई भी जो पढ़-लिख सकता है या जोड़-घटाना कर सकता है, उसे कोई खास आदर नहीं मिलता। हम सब बकबकियों का देश हैं ; हम बकबकियों को सर्वाधिक तनख्वाहें देते हैं और बकबकियों को सबसे अधिक पसंद करते हैं। इसलिये हमारे बच्चे निरंतर बोलते रहते हैं, यानी टेलीविज़न तथा स्कूल के शिक्षकों के प्रादर्शों (मॉडल) की नकल करते हैं। अब ''बुनियादी बातों'' को पढ़ाना अत्यंत कठिन हो गया है क्योंकि वे आज के समाज के लिये बुनियादी नहीं रही हैं, जिसका हमने निर्माण किया है।

IV

वर्तमान में दो संस्थान हमारे बच्चों के जीवन को बारी-बारी से नियंत्रित करते हैं: टेलीविज़न और स्कूल। ये दोनों ही बुद्धि के वास्तविक संसार को, धैर्य को, संयम और न्याय को घटाकर अंतहीन भ्रांतचित्तता की ओर ले जाते हैं। विगत शताब्दियों में बचपन और किशोरावस्था का समय वास्तविक कार्यों में, असली परोपकारिता में, असली साहसिक कार्यों में तथा ऐसे गुरुओं की खोज में निकल जाता था जो तुम्हें वह सीखा सकते थे जिसे

तुम वास्तव में सीखना चाहो। समय का बड़ा भाग सामुदायिक खोजबीन में खप जाता था – स्नेहाभ्यास में, मिलने-मिलाने में, समुदाय के हर स्तरों को समझने में और घर कैसे बनाया जाता है एवं दर्जनों ऐसी बातों में जो पूर्ण मनुष्य होने के लिये आवश्यक है।

परंतु जिन छात्रों को मैं पढ़ाता हूँ उनके समय का गणित इस प्रकार का है :

प्रत्येक सप्ताह के 168 घंटों में मेरे बच्चे 56 घंटा सोते हैं। अब उनके पास 112 घंटे अन्य कार्यों के लिये बचते हैं।

हालिया रिपार्टों के अनुसार, बच्चे सप्ताह में 55 घंटे टेलीविज़न देखते हैं। अब उनके पास बढ़ने के लिये बचे, सप्ताह में से 57 घंटे।

मेरे बच्चे सप्ताह में 30 घंटे स्कूल में पढ़ते हैं , इसमें आप 8 घंटे तैयार होने, घर से स्कूल और स्कूल से घर जाने के जोड़ लें। इसके अलावा वे औसतन 7 घंटे हर सप्ताह होमवर्क करते हैं – कुल योग हुआ 45 घंटे। उस समयावधि में भी वे सतत निगरानी में रहते हैं। उनके पास कोई निजी समय या निजी स्थान नहीं होता और यदि वे उपलब्ध समय या अंतराल का उपयोग अपनी वैयक्तिकता के लिये करने का प्रयत्न करें तो उन्हें दंडित किया जाता है। इस तरह उनके पास सप्ताह में 12 घंटे बचते हैं जिसके दौरान अपनी अनुपम चेतना का वे सृजन कर सकें। और हाँ मेरे शिशु भोजन भी करते हैं और उसमें भी कुछ समय तो लगता ही है – अधिक नहीं क्योंकि सारा परिवार एक साथ बैठकर भोजन करे, यह परंपरा तो अब खत्म हो चुकी है, किंतु यदि हम उन्हें सप्ताह में 3 घंटे शाम के भोजन के लिये आवंटित करें, तो हम हर बच्चे को सप्ताह में 9 घंटों का निजी समय देते हैं।

क्या यह पर्याप्त है ? किंतु बच्चा जितना अमीर होगा, उतनी ही कम टी.वी वह देखेगा या देखेगी। पर धनवान शिशु का समय भी उतनी ही संकीर्णता से वाणिज्यिक मनोरंजन के विस्तृत केटलाग द्वारा निर्धारित किया जाता है तथा उन्हें ऐसे निजी पाठों की कड़ियाँ अपरिहार्य रूप से दी जाती हैं जिसमें शायद ही उसकी रुचि होती हो।

परंतु ये गतिविधियाँ आश्रित मानवों को तैयार करने के प्रसाधनिक उपाय हैं, जो अपने घंटों को खुद नहीं भर सकते, ऐसे कोई तरीके ईजाद नहीं कर सकते जो उनके अपने ही अस्तित्व को महत्त्व और आनंद दे, उनका अर्थ बतलाए। यह एक राष्ट्रीय रोग

है, यह निर्भरता और उद्देश्यहीनता, और मेरे विचार से स्कूल प्रणाली, टेलीविज़न और पाठों की इसमें अहम् भूमिका है।

उस परिदृश्य पर नज़र डालिये जो हमारी एक राष्ट्र के रूप में हत्या कर रहा है : नशीले पदार्थ, बुद्धिशून्य प्रतियोगिताएँ, मनोरंजन के नाम पर सेक्स, हिंसा और अश्लीलता, जुआ और शराब – और सबसे गंदे कामोद्दीपक चित्र व लेख : जीवन जो वस्तुओं को क्रय करने मे बीत रहा है, संचय अब दर्शन हो गया है। ये सब निर्भर व्यक्तित्वों की लते हैं और यही वह सब है जिसका हमारे स्कूल नाम की ब्रॉण्ड को उत्पादन करना है।

V

मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि हमने अपने बच्चों से उनका जो समय छीन लिया है, उसका उन पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है – वह समय जो उन्हें बढ़ने के लिये चाहिये – और हम हैं कि उन्हें मजबूर कर रहे हैं कि वे अमूर्त बातों पर उसे खर्च करें। आपके लिये यह सुनना आवश्यक है, क्योंकि कोई भी सुधार जो इन विशिष्ट मनोविकृतियों पर प्रहार नहीं करता, वह दिखावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

1. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ वे वयस्कों की दुनिया के प्रति उदासीन हैं। यह सहस्त्रों वर्षों के अनुभव की अवमानना है। बड़े लोग क्या करते हैं इसका सूक्ष्म अध्ययन किसी समय किशोरों को सबसे अधिक प्रोत्साहित करता था, पर आज कोई भी बच्चों के बढ़ने में रुचि नहीं रखता है – और तो और खुद बच्चे भी नहीं – और कौन उन पर दोष मढ़ सकता है ? *हम खुद भी तो खिलौने हैं।*
2. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ उनमें अत्यल्प कौतूहल है, और जो लेशमात्र मात्र है वह भी क्षणिक ही है। वे देर तक एकाग्रचित्त नहीं रह सकते, उन चीज़ों में भी नहीं जिन्हें उन्होंने चुना था। क्या आप कक्षाओं को बदलने के लिए बार-बार बजने वाली घंटियों और ध्यान के भंग होने की घटना के बीच कोई संबंध देखते हैं?
3. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ उनमें भविष्य को समझने की क्षमता बहुत कम है

कि कल किस तरह आज से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। जैसा कि मैं अभी कह चुका हूँ, वे निरंतर वर्तमान में रहते हैं: जिस सटीक समय में वे अभी हैं वही उनकी चेतना की सीमा है।

4. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ, उन्हें इतिहास का ज्ञान नहीं है: वे नहीं समझते हैं कि किस तरह अतीत ने उनके अपने वर्तमान का पूर्व निर्धारण कर दिया है, उनके विकल्पों की सीमाएँ बाँध देता है, उनके मूल्यों और जीवन को आकार देता है।
5. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ वे एक दूसरे के प्रति क्रूर हैं, उनमें दुर्भाग्य के लिये कोई संवेदना नहीं है, वे कमज़ोरियों पर हँसते हैं और वे उनसे घृणा करते हैं जिनकी सहायता की आवश्यकता साफ दिखाई देती है।
6. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ वे घनिष्ठता तथा स्पष्टवादिता में असहज महसूस करते हैं। वे असली घनिष्ठता के साथ व्यवहार नहीं कर सकते क्योंकि उनकी जन्म से ही रहस्यों को अपने मन में छिपा कर रखने की आदत पड़ गई है। वह मन जो स्थूल बाहरी व्यक्तित्व के अंदर है जो उन कृत्रिम टुकड़ों और कतरों से बना है, जिन्हें टेलीविज़न से उधार लिया जाता है या शिक्षकों के साथ चालाकी करने हेतु प्राप्त किया जाता है। इसलिये क्योंकि वे वो नहीं हैं जिनका वे प्रतिनिधत्व करते से मालूम पड़ते हैं, घनिष्ठता के सामने छद्मवेश छिप नहीं पाता, इसलिये घनिष्ठ संबंधों से बचना ही लाज़मी है।
7. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ वे भौतिकवादी हैं, अपने स्कूल शिक्षकों का अनुसरण करते हैं, जो हर बात को भौतिकवादी ढंग से 'ग्रेड' में बाँटते हैं और टेलीविज़न के सलाहकार का जो संसार की हर वस्तु बेचते हैं।
8. जिन बच्चों को मैं पढ़ाता हूँ, वे पर-निर्भर, निष्क्रिय तथा नई चुनौतियों के सामने भीरू और कायर हैं। यह भीरूता ऊपर से दिखावटी बहादुरी से ढँकी रहती है या क्रोध या आक्रामकता के रूप में प्रकट होती है, किंतु अंदर से साहसहीनता का शून्य (वैक्यूम) है।

यदि इस राष्ट्रीय गिरावट को रोकना है तो मैं कुछ और स्थितियों के बारे में बतला सकता था जिनका निपटारा स्कूल सुधार के हित में करना होगा किंतु आप अब तक मेरे सिद्धान्त को समझ गए होंगे, चाहे उससे आप सहमत हों या न हों। या तो स्कूलों ने इन मनोविकारों को पैदा किया है, या टेलीविज़न ने या दोनों ने। यह गणित की सरल विधि है: स्कूल और टेलीविज़न के बीच, बच्चों का सारा समय खा लिया गया। बच्चों के तजुर्बे के लिये अन्य कोई समय नहीं है जिसका कोई अन्य महत्त्वपूर्ण कारण हो।

VI

क्या किया जा सकता है ?

सर्वप्रथम हमें एक जबरदस्त राष्ट्रीय बहस की ज़रूरत है, जो बंद न हो, दिन-ब-दिन, साल-दर-साल, ऐसी अटूट बहस जिसे पत्रकारिता में उबाऊ माना जाता है। हमें स्कूल नामक वस्तु पर चीखने, तर्क करने की आवश्यकता है, जब तक कि समस्या का हल न हो जाए या जो ऐसी टूट जाए जो सुधारी न जा सके, इस पार या उस पार। यदि हम इसे ठीक कर सकें तो उससे बेहतर कुछ नहीं, यदि न सुधार सके तो ''घर पर शिक्षा'' (होम स्कूलिंग) भिन्न मार्ग दिखाती है और जो संभावनाओं से भरपूर है। जो धन अभी हम स्कूल प्रणाली पर उड़ेल रहे हैं, उसे परिवार शिक्षा की ओर मोड़ दें तो एक ही दवा से दो रोगों का उपचार हो जाएगा, परिवार की दुरुस्ती और बच्चों की दुरुस्ती।

ईमानदारी से किया जाने वाला सुधार संभव है, पर उस पर कोई लागत नही आनी चाहिये। स्कूल जैसे रूग्ण संस्थान पर और अधिक धन तथा लोगों को झोंकना उसे और अधिक बीमार बना देगा। हमें स्कूल प्रणाली की बुनियादी तार्किकता पर पुनर्विचार करना और तय करना होगा कि वह *क्या* है जो हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे सीखें, और *क्यों* सीखें। गत 140 वर्षों से इस राष्ट्र ने उद्देश्यों को सामाजिक यांत्रिकी के केंद्रीय अभिजातों द्वारा गठित ''विशेषज्ञों'' के आलाकमान द्वारा नीचे की ओर ले जाया गया है। यह चल नहीं पाया है। यह चलेगा नहीं। और यह उस लोकतांत्रीय संकल्प से की गई सबसे बड़ी वादाखिलाफी है जिसने कभी राष्ट्र को कुलीन प्रयोग बनाया था। प्लेटो (अफलातून) के रिपब्लिक को पूर्वी यूरोप में रचने का रूस के प्रयास का विस्फोट हमने अपनी आँखों से

देखा; हमारी अपनी उसी तरह की केंद्रीय रूढ़िवादिता को, स्कूलों को माध्यम के रूप में उपयोग करके लागू करने की कोशिश की सिलाई भी उधड़ रही है, अलबत्ता अत्यंत ही धीमी गति से और बहुत अधिक कष्ट देते हुए। यह आगे चल ही नहीं सकता क्योंकि उसका मूलाधार ही यांत्रिकी, अमानवीय और पारिवारिक जीवन का विरोधी है। मशीनी शिक्षा से ज़िंदगियों को नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन वे सामाजिक विकृति, मादक वस्तुओं, हिंसा, आत्म-विनाश, उदासीनता तथा उन लक्षणों से पलटवार करेगी जो मैं उन बच्चों में देख रहा हूँ जिन्हें मैं पढ़ाता हूँ।

VII

अब समय आ गया है कि हम पीछे की ओर देखें, एक ऐसे शैक्षणिक दर्शन को दोबारा पाने के लिये जो कारगर हो। एक जिसे मैं विशेष तौर पर पसंद करता हूँ, वह यूरोप के शासक वर्गों की सहस्त्रों वर्षों तक पसंदीदा व्यवस्था थी। मैं उसका अपने अध्यापन में जितना हो सके उपयोग करता हूँ, अर्थात् वर्तमान अनिवार्य स्कूल पद्धति नामक संस्थान के बावजूद, जो कुछ कर सकता हूँ। मैं सोचता हूँ कि यह निर्धन बच्चों पर भी उतनी ही कारगर होती है जितनी धनाढ्य बच्चों पर।

इस अभिजात्य शिक्षा प्रणाली का सारतत्व यह है कि स्वयं अर्जित ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान का एकमात्र आधार है। इस प्रणाली में हर स्थान पर, हर आयु में आपको ऐसी पद्धति मिलेगी जहाँ बच्चों को बिना किसी मार्गदर्शक के अकेले छोड़ दिया जाता है ताकि वह समस्या से खुद ही निपटे। कभी-कभी समस्या खतरनाक भी होती थी, जैसे घोड़े को दौड़ाना या उसे उछलने को बाध्य करना, किंतु वह ऐसी समस्या थी जिसे हज़ारों बच्चे दस वर्ष की उम्र से पहले ही निपटा लेते थे। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि किसी ने ऐसी चुनौती पर जीत हासिल की हो अगर उसमें अपनी योग्यता के प्रति आत्मविश्वास न हो? कभी-कभी समस्या यह होती है कि एकाकीपन की समस्या का समाधान कैसे करें, जैसा कि थोरेऊ ने वाल्डेन पोंड में या आइन्स्टाइन ने स्विट्ज़रलैंड के कस्टम हाउस में किया था।

अभी हो यह रहा है कि हम अपने बच्चों से सारा समय छीन लेते हैं जिसकी उन्हें आत्म-ज्ञान विकसित करने हेतु ज़रूरत है। इसे रोकना होगा। हमें ऐसे स्कूली अनुभव

ईज़ाद करने होंगे जो काफी सारा समय लौटा सकें। यह जरूरी हो गया है कि हम बच्चों पर विश्वास करते हुए, काफी कच्ची उम्र से ही उन्हें स्वतंत्र अध्ययन का अवसर दें, कदाचित इसका प्रबंध स्कूल में ही किया जाए, किंतु वह संस्थात्मक ढाँचे से दूर हो। ज़रूरत ऐसे पाठ्यक्रमों की खोज करने की है जिसमें प्रत्येक बच्चे के पास अपनी निजी विलक्षणता एवं आत्म-निर्भरता को विकसित करने का अवसर हो।

कुछ समय पूर्व मैंने 70 डॉलर देकर अपनी कक्षा की एक बारह वर्षीय लड़की को, उसकी अंग्रेजी न बोलने वाली माता के साथ बस से न्यू जर्सी तट पर भेजा, जहाँ उसे सीब्राइट के पुलिस प्रमुख को दोपहर के भोजन हेतु ले जाना था और समुद्रतट में प्लास्टिक की बोतल डालकर उसे प्रदूषित करने के लिये क्षमा माँगनी थी। इस सार्वजनिक क्षमायाचना के बदले मैंने पुलिस प्रमुख से ऐसा इंतजाम कर लिया था कि वे बच्ची को एक पूरे दिवस, छोटे शहर की पुलिस प्रक्रिया का प्रशिक्षण देंगे। कुछ दिनों बाद मेरे दो और बारह वर्षीय बच्चे अकेले हार्लेम से पश्चिमी इकत्तीसवीं गली में गए और वहाँ उन्होंने एक समाचार-पत्र संपादक के साथ प्रशिक्षु के तौर पर काम करना आंरभ किया। उसके बाद मेरे तीन बच्चों ने प्रात: छ: बजे जर्सी के दलदलों में जाकर एक ट्रक कंपनी के मालिक के मन का अध्ययन किया जो अपने अठारह पहियों वाले वाहन को डलास, शिकागो और लास एन्जेलीस की ओर रवाना कर रहे थे।

क्या ये किसी 'विशेष' कार्यक्रम के 'विशेष' बच्चे हैं ? एक मायने में हैं, किंतु इस कार्यक्रम के बारे में मेरे तथा बच्चों के अलावा और कोई नहीं जानता। वे सेंट्रल हार्लेम के अच्छे बच्चे हैं, परंतु उनकी इतनी खराब पढ़ाई हुई थी कि उनमें से अधिकांश तेज़ी से जोड़-घटा तक नहीं सकते थे, और उनमें से एक को भी नहीं मालूम था कि न्यू यॉर्क शहर की जनसंख्या क्या है या न्यू यार्क, कैलिफोर्निया से कितनी दूर है।

क्या इससे मुझे चिंता होती है? बिलकुल होती है किंतु मुझे विश्वास है कि जैसे-जैसे उन्हें स्व-अर्जित ज्ञान प्राप्त होगा, वे स्व-शिक्षक बन जाएँगे – और केवल स्व-शिक्षा का ही स्थायी मूल्य होता है।

हमें बच्चों को अभी से ही स्वतंत्र समय देना होगा क्योंकि वही स्व-ज्ञान की कुँजी है, और हम उन्हें पुन: असली संसार में यथाशीघ्र शामिल करें जिससे कि उनका स्वतंत्र

समय काल्पनिकता के बजाय अन्य बातों में लग सके। यह आपात स्थिति है - इसमें गलती को सुधारने के लिये जल्द कार्यवाही की ज़रूरत है।

VIII

पुनर्रचित स्कूल प्रणाली की और कौन सी ज़रूरत है ? उसे कार्यशील समुदाय को जोंक की तरह चूसना बंद करने की ज़रूरत है। मानव के बही-खाते में जितने भी पन्ने हैं केवल हमारा पीड़ित देश है जिसने बच्चों को भंडारगृहों में डाल दिया है और उन सभी की भलाई के लिये कोई पूछ-ताछ नहीं की। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि समुदाय-सेवा को स्कूल प्रणाली का आवश्यक अंग बना देना चाहिये। नि:स्वार्थ भाव से काम करने का अनुभव, जो वे इससे सीखेंगे, के अलावा यह बच्चों में जीवन की मुख्यधारा के प्रति जवाबदारी लेने का सबसे उत्तम तरीका है।

पाँच वर्षों तक मैंने छापामार स्कूल कार्यक्रम चलाया, जहाँ मैंने हर बच्चे से, अमीर और गरीब, होशियार और मंद, साल में 320 घंटे कठोर सामुदायिक सेवा करवाई। उनमें से दर्जनों बच्चे जो अब बड़े हो गये थे ने कई साल बाद कहा कि किसी की सहायता करने के अनुभव ने उनका जीवन बदल दिया है। इससे उन्होंने नई दृष्टि से देखना, लक्ष्यों तथा मूल्यों पर पुनर्विचार करना सीखा। यह तब हुआ था जब वे तेरह वर्ष के थे, मेरे लैब स्कूल प्रोग्राम में और यह इसलिये संभव हो सका क्योंकि मेरा धनाढ्य स्कूल जिला अस्त-व्यस्त था। जब ''स्थायित्व'' लौटा, प्रयोगशाला बंद हो गई। विभिन्न वर्गों के बच्चों का वह समूह अत्यधिक सफल रहा, और इस पर इतना कम खर्च आया कि उसे जारी नहीं रखा जा सका।

स्वतंत्र अध्ययन, सामुदायिक सेवा, साहसिक कार्य व अनुभव, निजता और एकान्त की बड़ी खुराकें, हज़ारों प्रकार की कारीगरी सीखना – वह एक दिवसीय हो या दीर्घ अवधि की – ये सभी स्कूल व्यवस्था के वास्तविक सुधार आरंभ करने के शक्तिशाली, सस्ते और प्रभावी उपाय हैं। परंतु किसी भी पैमाने पर किया गया सुधार हमारे क्षतिग्रस्त बच्चों और हमारे क्षतिग्रस्त समाज को नहीं सुधार सकता जब तक कि हम ''स्कूल'' के विचारान्तर्गत *परिवार* को सम्मिलित नहीं करते जो कि शिक्षा का इंजन है। यदि हम स्कूलों का उपयोग बच्चों को अभिभावकों से अलग करने हेतु करते हैं – तो

यकीन मानें – यही तो स्कूलों का मुख्य कार्य तब से रहा है जब जॉन कॉटन ने 1650 में घोषणा की थी कि यह बे-कॉलोनी स्कूलों का उद्देश्य है, तथा होरेस मान ने 1850 में मेसाच्यूएट्स स्कूलों के लिये इसी उद्देश्य की घोषणा की थीं – हम आगे भी उस डरावने शो के दर्शक बने रहेंगे जिसे हम आज देख रहे हैं।

''परिवार का पाठ्यक्रम'' किसी भी अच्छे जीवन का हृदय है। हम उस पाठ्यक्रम को छोड़ आए हैं – अब वक्त है कि हम उसकी ओर वापस लौटें। शिक्षा में समझदारी का उपाय हमारे स्कूलों के लिये यह है कि वे पहल करें और संस्थानों के चुंगल से पारिवारिक जीवन को मुक्त करें। स्कूल के समय के दौरान ही अभिभावक और बच्चे का मिलाप कराएँ जो परिवार के रिश्तों को सुदृढ़ करेगा। यही मेरा वास्तविक उद्देश्य लड़की को उसकी माँ के साथ पुलिस प्रमुख से मिलने के लिये न्यू जर्सी तट पर भेजने का था।

मेरे पास परिवार पाठ्यक्रम को प्रतिपादित करने के कई विचार हैं और मेरा अनुमान है कि आप में से कइयों के पास भी अनेक विचार होंगे। हमारी सबसे बड़ी समस्या जमीनी स्तर पर सोचने-विचारने में आने वाली दिक्कतों की है जिससे की स्कूल व्यवस्था में सुधार हो सके। कई निहित स्वार्थ वाली ताकते हैं जो हमेशा समय पर अपना अग्राधिकार कायम कर लेती हैं, स्कूल पद्धति से लाभार्जन करती हैं – भले ही ऊपर से कुछ और दिखावा करती रहे।

हमें माँग करनी चाहिये कि नई आवाजों और विचारों को सुना जाए : मेरे और आपके विचार। हमने पेट भर अधिकृत आवाजों को मीडिया, टी.वी तथा प्रेस के माध्यम से सुन लिया – एक दशक तक सभी के लिये अब खुली बहस की आवश्यकता है, अब और ''विशेषज्ञ'' की राय नहीं चाहिये। शिक्षा में विशेषज्ञ कभी सही नहीं रहे : उनके समाधान खर्चीले और स्वयं का हित साधते हैं और वे सदैव और अधिक केंद्रीकरण की बात करते हैं। इसके परिणाम हमने देख लिये हैं।

अब लोकतंत्र, वैयक्तिकता और परिवार की ओर लौटने का समय है।

अध्याय - 3

हरित मोनोंगहेला

जेराल्डाइन डॉज फाउन्डेशन, प्रथम पुरस्कार
—कोलंबिया विश्वविद्यालय राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता

शुरुआत में ही मैं शिक्षक बना गया, बिना सोचे-समझे। उस समय मैं हरित मोनोंगहेला नदी के किनारों पर बड़ा हो रहा था, जो पिट्सबर्ग के दक्षिण-पश्चिम में चालीस मील की दूरी पर है, और उस गहरे हरे रंग की रहस्यमयी नदी के तटों पर मैं छात्र भी बन गया, नीली ड्रेगन-मक्खियों की उड़ान के पैटर्न का जानकार तथा उनकी चतुर शत्रु इरीडिसेंट (किलनी) का जो नदी किनारे के विलो (वृक्ष की एक प्रजाति) पर उपद्रव मचाती रहती थीं।

''किलनियों से बचना जैकी।'' मेरी दादी मौसी मुझे हमेशा सावधान करती जब मैं नदी के किनारे जाता था, गर्मी हो या सर्दी, दूसरी गली से मात्र दो मिनट का रास्ता जहाँ मैं रहता था, और मुख्य सड़क के ट्राली ट्रेक्स तथा पेनिसिल्वेनिया रेल की पटरियों के बाद, जो उनके समानांतर चलती थी। मैं लाल और पीली किलनियों को पीली-हरी

पत्तियों में छेद कर उन्हें चूसते हुए नदी तट पर देखा करता था। आठ साल की आयु में मैंने अपना पहला पान आइरन सिटी में किया था, जितनी सिगरेटें मिल सकती थीं उन्हें पीता था और खतरनाक स्त्री-पुरुषों को वहाँ रात में कंबल बिछा कर प्रेमलीला करते देखता था, बारह वर्ष की उम्र का होने के भी पहले। यह मेरी प्रयोगशाला थी: मैंने वहाँ बरीकी से देखना और निष्कर्ष निकालना सीखा था।

नदी ने मुझे शिक्षक कैसे बना दिया? सुनिये। नदी पैडल-व्हील चलित स्टीमरों से मध्य धारा में गुलज़ार रहती थी, घूमते पैडल सफेद बूँदों के बादल बनाते और नदी के हरे जल को उबाल कर चटक नारंगी बना देते थे जहाँ नीचे की धारा तेज बहती थी। किनारे से आप पानी पर *थम्प, थम्प, थम्प* का शोर सुन सकते थे। पूरे शहर से लड़के भय-मिश्रित आश्चर्य से इस दृश्य को निहारते रहते थे, दिन में दसियों बार। कोई भी कभी इन स्टीमरों को देखकर उदासीन नहीं हुआ क्योंकि जो भी महत्त्वपूर्ण है वह कभी उबाऊ नहीं हो सकता। इस फर्क को आप भी देख सकते हैं, क्या नहीं देख सकते? उन गंभीर नौकाओं और गत कुछ दशकों के एकदम उबाऊ अंतरिक्ष यानों के बीच, बस उड़ते हुए कबाड़, उद्देश्यहीन जिस पर कोई लड़का क्यों विश्वास करेगा? प्रक्षेपास्त्र और रॉकेट नीरस खिलौने हैं जिन्हें मैनहटन के बच्चे क्रिसमस के दूसरे दिन ही रख देते हैं और दुबारा उन्हें छूते भी नहीं हैं; नदी की नौकाएँ गंभीर जादू थीं, जो बच्चों की दुनिया को बड़ों की दुनिया से स्पष्टत: विभाजित करती थीं। लेवी-स्ट्रास इसे बेहतर ढंग से समझा सकेंगे।

मोनोंगहेला में, उस नदी के तीर पर हर कोई मेरा शिक्षक था। प्रतिदिन बच्चों को लगता था कि पानी और कोयला लेने के लिये एक मील लंबी रेलें शहर में रुकेंगी; ब्रेकमेन और इंजीनियर बाहर आकर बहती नाक वाले बच्चों के पास जाकर सूतों के गट्ठरों को बाक्सकार के अंदर बाहर करेंगे, फ्लैट कार, टैंक कार, कोल कार तथा अन्य कई प्रकार की कारों में जिनके कार्य हमें उसी तरह कंठस्थ हो गए थे जैसे हम दुश्मन के जहाज की आकृति को याद कर लेते थे। वर्ष में एक दफा हमें केबूज (मालगाड़ियों में रेल कर्मियों का रसोईघर) में जाने दिया जाता था जिसमें बीयर की दुर्गन्ध आती थी और हमें बोलोना-आन-व्हाइट-ब्रेड सैंडविच दिया जाता था। अनजान लोग मोनोंगहेला के

बच्चों को व्याख्यान देते, सलाह देते और प्रेरित करते थे – यह उनका वैसा ही कर्तव्य था जैसा रेलों को चलाना।

कभी-कभी धारा के बीच कोई नौका रुक जाती थी, उसके चालक दल के कुछ सदस्य चप्पु चलाकर छोटी डोंगी (स्किफ) से किनारे आकर उसे सरपत से बाँध देते थे। यही वह मौका होता था जब प्रत्येक जर्जर डोंगी में, बारह खंड छोटे से गाँव के सारे बच्चे भर जाते थे, समुद्री डाकुओं की तरह खींचते, कभी-कभी पतवार की जगह छड़ियों से ''बेली आफ पिट्सबर्ग'' या ''द ओरीजनल रिव्हर क्वीन'' पर हमला करने के लिये जाते थे। मोनोंगहेला में एक तरह का शिष्टाचार था। नियमों को लिपिबद्ध करना आवश्यक नहीं था; यदि समय होता तो बड़े लोग बच्चों को सिखाते कि किस तरह बड़ा हुआ जाता है। जब हमारा समय पूरा हो जाता तब हम रोते नहीं थे; बड़ों को काम करना होता था, हम यह जानते थे और चौकड़ी भरते हुए चले जाते थे, इस बात के लिये कृतज्ञ होकर कि वे हमारे भविष्य को सँवारने हेतु अपना समय देते हैं – भले ही थोड़ा ही सही।

मोनोंगहेला में पलते-बढ़ते मैं तीन बार गिरफ्तार हुआ, या यूँ कहिये कि पुलिस पकड़ कर जेल ले गई जहाँ मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ती कि पादरी आए और मुझे नहलाए-धुलाए और तैयार करें। मैं उन दिनों के बदले कुछ नहीं चाहूँगा। पहली मर्तबा जब मैं एक कार के नीचे पेट के बल लेटा पकड़ा गया था, तब नौ वर्ष का था। 1943 में कर्फ्यू के आधा घंटे बाद मोनोंगहेला घाटी की खिड़कियों के पर्दे सदैव इस आशंका से बंद रहते थे कि हिटलर के वायुयान किसी न किसी तरह अटलांटिक महासागर को लाँघ कर, नदी के दोनों और की इस्पात मिलों तक पहुँच जाएँगे। नाज़ी लोग कदाचित इस इंतज़ार में रहते थे कि कोई चिंतित माँ कर्फ्यू के बाद अपने बच्चों को ढूँढने के लिये टार्च लेकर निकले, ताकि उसके पश्चात् *धड़ाम्!* ट्यूटेनिक हवाई बेड़ा धमाल मचा दे!

उस सिपाही का नाम चार्ली था। हम हवालात तक पहुँचे – माँ को तब तक खबर नहीं दी गई जब तक कि चार्ली ने गोरिंग के प्रलयकारी लुफ्तवेफ का खाका नहीं खींच दिया। क्या गज़ब का भू-राजनीति का सबक था वह। अगली दफा मैंने शहर के मत्स्यालय में गोल्डफिश को तीर से मार डाला और जेल से मुझे वाचनालय ले जाया गया, जहाँ मुझे एक माह तक पशुओं के जीवन के बारे में पढ़ने की सज़ा मिली। अगली बार विजय

दिवस पर जब जापानियों ने चीख कर कहा ''अंकल'', तो जोश में मैंने एक पुलिस वाहन का काँच गुलेल से फोड़ दिया। मैंने अपना अपराध कबूल किया और टूटे काँच की कीमत अदा करने हेतु मुझसे नौकरी कराई गई – अपने दादा के मुद्रण कार्यालय में पचास सेंट प्रति सप्ताह पर साफ-सफाई करने का काम।

कार्नेल जाने के बाद मैंने मोनोंगहेला और हरित सरिता को सिर्फ एक बार और देखा: जब मैं वहाँ अपने शुरुआती वर्ष की समाप्ति के उपरान्त अपनी मृत्युशैया पर पड़े दादाजी को खून देने के लिये गया। वे शहर के चिकित्सालय में लेटे हुए थे, अपनी मृत्यु पूर्व भी उतने ही मज़बूत, जितना अपने जीवन में थे। दूसरे कमरे में मेरी दादी भी अंतिम साँसे गिन रही थीं। दोनों चौबीस घंटे के भीतर चल बसे। मेरे दादा, हैरी टेलर ज़िमर सीनियर मेरा रक्त लेकर कब्रिस्तान में अपनी मज़ार में चले गए। मेरा परिवार इधर से उधर भटकता रहा, किंतु हृदय से मैं कभी भी मोनोंगहेला को नहीं छोड़ सका, जहाँ मैंने हर किसी से पढ़ते हुए पढ़ाना सीखा, जहाँ मैंने काम से प्रेम करना सीखा, अपने हिस्से के उत्तरदायित्त्व को पूरा करना सीखा, एक लड़के के रूप में जहाँ मैंने साहसिक कार्यों को ढूँढना सीखा – उन सभी चीज़ों में जो मेरे आस-पास थीं – नदी और वे लोग जो उसके तट पर रहते थे।

1964 में, मैं जमकर पैसे बना रहा था। यही वह कारण था कि मैं वह सब छोड़कर स्कूल अध्यापक बन गया। मैं विज्ञापन कंपनी में कॉपीराइटर था, एक ऊर्जावान युवक जिसमें 30 सेकंड के टेलीविज़न कमर्शियल लिखने की निपुणता थी। मेरा महीने भर का काम एक दिन में पूरा हो जाता था, शेष समय पावर नाश्ते में, काम के बाद माइकेल के पब में मार्टिनी सुड़कने में, लगभग बीस एजेंसियों के चढ़ते-उतरते भाग्य का अंदाजा लगाने में ताकि कब सही समय पर और अधिक कमाई के लिये दूसरी नाव पर सवार हो जाऊँ तथा अंतहीन पार्टियों में बीत जाता था, जिसके कारण अंत में भयानक सिरदर्द होता था।

मुझे यह बात खटकती थी कि काम की सारी आवश्यकताएँ बाहर से उपजती थीं, लेकिन उससे भी अधिक खटकने वाली बात यह थी कि जो काम मैं करता था उसका बहुत कम महत्त्व था। उनके लिये भी, जिनके लिये मैं यह काम करता था। सबसे बुरी

बात यह थी कि इस काम की समस्याएँ इतने पतले द्वार से निकलती थीं जिससे यह स्पष्ट था कि भूत, वर्तमान व भविष्य एक ही टुकड़े में समाहित थे, एक उन्तीस वर्षीय व्यक्ति का काम, उन्तालीस वर्षीय व्यक्ति के काम से कतई अलग नहीं था, या उन्चास वर्षीय व्यक्ति के काम से (हालाँकि एक भी उन्चास वर्षीय कॉपीराइटर कभी दिखाई नहीं दिया – मैं नहीं जानता कि क्यों)।

''मैं जा रहा हूँ,'' एक दिन मैंने अपने कॉपी प्रमुख से कहा।

''क्या तुम पागल हो गए हो जैक ? इस वर्ष तुम्हें लाभ में हिस्सा मिलेगा। तुम्हें जो भी प्रस्ताव मिला है, मैं भी उतना देता हूँ। किसके लिये जा रहे हो''

''किसी के लिये नहीं, डैन। मैं जूनियर हाई स्कूल में पढ़ाऊँगा।''

''जब तुम अगली दफा अपनी माताजी से मिलो, तो उन्हें मेरी ओर से कहना कि उन्होंने एक मंदबुद्धि को पाला-पोसा है! हे भगवान! तुम पछताने वाले हो! न्यू यॉर्क शहर में हमारे पास स्कूल नहीं है, हमारे पास खो गई आत्माओं के लिये कलमे हैं। शिक्षण एक घोटाला है, हारने वालों के लिये एक कल्याणकारी योजना जो और कुछ नहीं कर सकते हैं।''

मैं अपने विज्ञापन सहकर्मियों के साथ कुछ दिनों तक यूँ ही चक्कर काटता रहा। उनकी घृणा ने मेरे संकल्प को और दृढ़ कर दिया, मोनोंगहेला की नावें और रेलें मेरे अंदर अब भी क्रियाशील थीं। मुझे कुछ ऐसा करने की आवश्यकता थी जो बेतुका न हो, मुझे कोई अन्य पार्टी (ग्राहक) या बैंक की पासबुक में कोई नई अमूर्त संख्या नहीं चाहिये थी।

अत: मैं जूनियर हाई स्कूल में स्थानापन्न (एवजी) शिक्षक बन गया, मैं लिंकन सेंटर से कोलंबिया है, और हार्लेम से दक्षिणी ब्रांक्स के बीच इधर-उधर होता रहा। तीन महीने बाद भी निराशाजनक कार्य स्थितियों, बदसूरत कमरों, फटी किताबों, अधिकारियों की अनवरत छोटी-छोटी शिकायतों, घंटियों, बज़र्स, केफेटेरियाओं में बेस्वाद शिक्षकों का भोजन, बिना इस्तरी के कपड़े, शिक्षकों के बीच कभी भी बच्चों के बारे में बाते न होना – जो मैं कभी न समझ सका। (आज तक, इस कारोबार में तीस वर्ष गुजार चुकने के बाद, मैं ईमानदारी से कह सकता हूँ कि मैंने एक बार भी बच्चों के विषय में, या शिक्षा

सिद्धांत के बारे में शिक्षकों के कक्ष में चर्चा होते नहीं सुनी।)

असल में पढ़ाने के पहले ही दिन मुझ पर एक लड़के ने हमला कर दिया। वह सिर के ऊपर कुर्सी उठाए मुझ पर फेंकने को तत्पर था। यह वाकया एक बदनाम जूनियर हाईस्कूल वाल्डेल में हुआ जो 113 वीं सड़क पर है। मुझे आठवीं कक्षा की टाइपिंग क्लास दी गई – पचहत्तर छात्र और टाइपराइटर – और यह आधिकारिक आदेश: कि ''किसी भी स्थिति में तुम उन्हें टाइप नहीं करने दोगे। तुम्हारे पास उचित लायसेंस नहीं है। समझे?'' एक मि. बाश नामक व्यक्ति ने ऐसा मुझसे कहा था।

मेरे दरवाजा बंद करने और टाइप न करने का हुक्म देने के साठ सेंकड के अंदर, एक सौ पचास हाथ टाइपराइटर कवर के अंदर पहुँच गए और टंकन शुरू हो गया। पर एक साथ नहीं – वह बहुत आसान होता। पहले तीन मशीनें पीछे की दाहिनी सीटों पर टकटकाने लगीं। जल्दी करो, कौन है ये अपराधी? मैं किनारे की ओर दौड़ कर जाता और चीखता, बंद करो, और तभी एकाएक मेरे पीछे तीन अन्य मशीने चालू हो गई। मैं तेजी से घूमा – जैसा कि कोई नवयुवक ही कर सकता था, मैंने एक छोटे लड़के को पकड़ा। तब मशीनों के टंकन का संगीत प्रवाहित होने लगा, घंटियाँ बज उठीं, प्लेटेन (टाइपराइटर का एक पुर्जा) फेंके जाने लगे। मैंने लड़के को उसकी कुर्सी से उठा लिया, और अपने फेफड़ों की पूरी शक्ति से चिल्लाया कि यह सब बंद करो अन्यथा मैं इस बदमाश का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

''बचिए'' एक लड़की चीखी, मैं उसकी आवाज़ की ओर ठीक समय पर मुड़ा तो देखा कि जिस लड़के को मैं उठाए हुए था उसका बड़ा भाई मेरी ओर कुर्सी उठाए बढ़ रहा था। उसके भाई को छोड़ कर मैंने भी एक कुर्सी उठा ली। मुकाबले की स्थिति, हम दोनों एक-दूसरे को लगभग बीस फुट की दूरी के अंतर पर घूर रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो वक्त थम गया है। पूरी कक्षा चिढ़ा रही थी, हाहाकार मचा रही थी, और तभी कक्षा का द्वार खुला तथा सहायक प्राचार्य बाश आए, जिन्होंने मुझे टाइपिंग न कराने का आदेश दिया था।

''मि. गेट्टो, क्या ये बच्चे टंकन कर रहे थे ?''

''नहीं सर'', मैंने कुर्सी नीचे रखते हुए कहा, ''किंतु शायद वे करना चाहते हैं।

आपकी क्या सलाह है ? वे टंकन नहीं तो क्या करें ?''

पलभर के लिये उन्होंने मेरी ओर देखा कि अवज्ञा या अवमानना के कोई चिन्ह तो नहीं दिखाई दे रहे हैं, पर शायद यह सोचकर कि इस नए घमंडी के मुँह लगने से क्या फायदा, उन्होंने इतना ही कहा कि, ''अपने संसाधनों पर निर्भर रहिये'', और चले गए।

ज्यादातर बच्चे हँस पड़े – उन्होंने ऐसे नाटक पहले भी देखे होंगे। स्थिति काबू में आ गई, किंतु मैंने धीरे से वाल्डेल को ''डेथ स्कूल'' नाम दिया। घर लौटते वक्त कार्यालय सचिव से मैंने कहा कि उन्हें स्थानापन्न की आवश्यकता हो, तब मुझे न बुलाए।

अगले ही दिन सुबह 6:30 बजे फोन की घंटी बजी, मि. गेट्टों क्या आप आज काम के लिये उपलब्ध हैं ? उस ओर की आवाज़ ने शीघ्रता से कहा।

''कौन बोल रहा है ?'' मैंने शंकित होकर पूछा। (दस स्कूल उन दिनों मेरा उपयोग एवजी कार्य हेतु करते थे, और प्रत्येक तत्काल अपनी पहचान बतलाता था।)

''कानून एकदम साफ है मि. गेट्टो, कि हम यह बताने हेतु बाध्य नहीं हैं जब तक कि आप यह न बताएं कि आप उपलब्ध हैं या नहीं।''

''छोड़िये, मैं भौंका, ''केवल एक ही स्कूल ऐसी बकवास कर सकता है। मेरा जवाब है *नहीं* । मैं कभी भी आपके सूअरों के बाड़े वाले स्कूल के लिये उपलब्ध नहीं हूँ।'' कहकर मैंने चौंगा (रिसीवर) क्रेडल पर पटक दिया।

परंतु सच्चाई तो यह थी कि कोई भी स्थानापन्न कार्य सुहाना सफर नहीं था: स्कूलों की एक विचित्र आदत एवजियों का शोषण करने तथा उन्हें जीवित रहने हेतु कोई सहायता न उपलब्ध कराने की थी। बहुत संभव है कि मैं वापस विज्ञापन के संसार में चला जाता, यदि एक लड़की जो असहनीय हालातों से मुक्त होने के लिये छटपटा रही थी, ने मुझे अपने निजी, स्कूली दु:स्वप्न में शरीक न कर लिया होता और न बतलाती कि किस तरह मैं शिक्षण में अपने महत्त्व को पा सकता था, उसी तरह जैसे उन मजबूत लोगों ने नौकाओं और रेलों में अपने महत्त्व हो ढूँढा था। वो मूल्य जिसकी हम सबको अपने स्वाभिमान के लिये ज़रूरत है।

हुआ यूँ कि कभी-कभी मुझे एक प्राथमिक स्कूल से बुलावा आता था। इस दिन एक तीसरी कक्षा को पढ़ाने का काम दसवीं सड़क के स्कूल पर था, जिसमें कि उन

दिनों करीब शत प्रतिशत गैर-हिस्पैनिक अध्यापक वर्ग था और 99 प्रतिशत हिस्पैनिक छात्र थे।

अनेक ज़रूरतमंद शिक्षकों की तरह मैं भी सारा दिन खड़े-खड़े एक के बाद एक बच्चे को पढ़ते हुए सुनता और अपनी अधिकांश ऊर्जा को बाकी बच्चों को चुप कराने में खर्च कर रहा था। यह अत्यंत निम्न श्रेणी की कक्षा थी, एक भी छात्र दो या तीन शब्द बिना अटके नहीं बोल पाता था। एकाएक उनमें से एक माइलाग्रोस नाम की लड़की बिना अटके ही अपना पुरा पाठ पढ़ गई। कक्षा के बाद मैंने उसे अपनी डेस्क पर बुलाकर पूछा कि वह इस खराब पढ़ने वालों की कक्षा में क्यों थी। उसने बताया कि ''वे लोग'' (प्रशासन) उसे उस कक्षा से निकलने नहीं देंगे क्योंकि उन्होंने उसकी माँ को कहा था कि लड़की बहुत खराब पढ़ती है और ऐसा भ्रम पाले हुए है कि वह बेहतर पढ़ती है। ''परंतु देखिये मि. गेट्टो, मेरा भाई छठी कक्षा में है और मैं उसकी अंग्रेजी की पुस्तक का एक-एक शब्द, उससे बेहतर पढ़ सकती हूँ!''

मैं कुछ परेशान हो गया, पर उतना नहीं। नि:संदेह अधिकारियों को पता था कि वे क्या कर रहे हैं। लेकिन नन्ही बच्ची इतनी ज़्यादा हताश थी, कि मैंने उसे कहा कि वह शांत हो जाए और छठी कक्षा की पुस्तक से पाठ पढ़ कर मुझे सुनाए। मैंने उसे समझाया कि यदि वह ठीक पढ़ेगी तो मैं उसके लिये प्राचार्य से बात करूंगा। हालाँकि मुझे कोई उम्मीद नहीं थी।

परंतु, माइलाग्रोस को न्याय मिलने की आशा थी। ''द डेविल एंड डेनियल वेबस्टर'' के प्रथम दो पृष्ठ वह एक साँस में पढ़ गई। हे ईश्वर! मैंने सोचा यह असली पाठक है। यहाँ क्या कर रही है ? हो सकता है यह एक मामूली घटना हो, जिसे सरलता से सुधारा जा सकता है। मुझे नहीं पता था कि मेरे द्वारा माइलाग्रोस को बेहतर कक्षा में डालने की याचना करना *बर्र के छत्ते* में हाथ डालने जैसा हो जाएगा।

''आपकी हिम्मत की दाद देनी होगी मि. गेट्टो! मुझे याद नहीं कि कब किसी एवजी शिक्षक ने इससे पहले कभी बताया हो कि स्कूल कैसे चलाया जाता है। क्या आपने रीडिंग का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया है ?''

''नहीं।''

''तब शायद आप यह प्रकरण विशेषज्ञों के लिये छोड़ दें।''

''लेकिन बच्ची *पढ़* सकती है।''

''आप क्या सलाह देते हैं ?''

''मेरी राय है कि आप उसका टेस्ट लें, और यदि वह मूर्ख न हो, तो उसे बेहतर ऊँची कक्षा में भेजा जाए।''

''मुझे आपके बोलने का ढंग पसंद नहीं है। मि. गेट्टो, हमारा कोई भी बच्चा मूर्ख नहीं है। और आपको पता चलेगा कि माइलाग्रोस जैसी लड़कियाँ आप जैसे नौसिखियों को उल्लू बनाने के कई तरीके जानती हैं। इस मामले में बच्ची ने एक कहानी रट ली है। यदि मुझे आप जैसे लोगों के साथ बहस में समय नष्ट करना पड़े तो मेरे पास स्कूल चलाने के लिये वक्त ही नहीं बचेगा।

परंतु मैंने लड़की की वकालत करने की ठान ली थी, यद्यपि शायद फिर कभी भविष्य में उसकी शक्ल भी मैं न देखूँ।

मैं अड़ा रहा। और प्राचार्या अंतत: स्वयं माइलाग्रोस की अगले बुधवार को स्कूल बंद होने के पश्चात् परीक्षा लेने को तैयार हो गई। मैंने तय कर लिया कि अगले दिन छोटी बच्ची को बतला दूंगा। तब तक मुझे भी ऐसा लगने लगा था कि शायद प्राचार्य का कहना सही होगा – उसने एक कहानी कंठस्थ कर ली होगी – किंतु फिर भी मैंने उसे सावधान किया कि उसे पूरी एडवांस्ड रीडर की शब्दावली मालूम होनी चाहिये और कोई भी कहानी पढ़नी आनी चाहिये जो प्राचार्या चुने, और वह भी बिना झिझके। मेरी जवाबदारी खत्म हुई, मैंने खुद से कहा।

अगले बुधवार को मैं स्कूल में रुका रहा जब तक कि माइलाग्रोस की अग्नि परीक्षा समाप्त नहीं हो गई। 3.30 बजे उसने शर्माते हुए कमरे का दरवाजा खोला।

''कैसा रहा ?'' मैंने पूछा

''मुझे पता नहीं'', उसने बताया, ''किंतु मैंने एक भी गलती नहीं की। श्रीमती हैफरमैन बहुत नाराज़ थी, इतना मैं कह सकती हूँ।''

अगले दिन प्रात: मैं श्रीमती हैफरमैन, प्राचार्या से स्कूल खुलने से पहले मिला। ''ऐसा लगता है हमसे माइलग्रोस के मामले में गलती हुई, उन्होंने रूखाई से कहा'', उसे ऊपर की कक्षा में डाला जाएगा। उसकी माँ को सूचना दे दी गई है।

कई सप्ताह बाद मेरा पुन: स्कूल में एवजी शिक्षक के रूप में जाना हुआ, माइलाग्रोस मेरे पास आई और उसने मुझे बताया कि वह उच्च कक्षा में है और अच्छे से पढ़ रही है। उसने एक मुहरबंद कार्ड भी मुझे दिया। उस दिन जब रात को मैं घर लौटा, तो देखा कि कार्ड बिना खुला मेरे सूट की जेब में पड़ा था। खोलकर देखा तो वह एक भड़कीला जन्मदिवस कार्ड था जिस पर फूल बने थे। कार्ड खोलने पर मैंने पढ़ा, ''आपके जैसा शिक्षक ढूँढे नहीं मिल सकता। हस्ताक्षर। आपकी छात्रा, माइलाग्रोस।''

उस सरल वाक्य ने मुझे जीवन भर के लिये शिक्षक बना दिया। यह मेरी पहली प्रशंसा थी। अपने कार्यानुभव में मैंने कभी नहीं सुना कि इसका कोई मायना था। मैं उसे कभी भूल न पाया, हालाँकि मैंने माइलाग्रोस को फिर कभी नहीं देखा। उसके विषय में फिर 1988 में सुना, चौबीस वर्षों के बाद, जब एक दिन मैंने अखबार में पढ़ा

व्यावसायिक शिक्षक पुरस्कार

> यूनाइटेड फेडरेशन आफ टीचर्स की माइलाग्रोस एम, को सम्मानित आकुपेशनल टीचर्स अवॉर्ड, जो राजकीय शिक्षा विभाग द्वारा दिया जाता है, ''अनुकरणीय पेशेवराना कार्य तथा प्रदर्शित उपलब्धियों'' के लिये जीता है। नार्मन थामस हाई स्कूल न्यू यॉर्क सिटी में सेक्रेटेरियल अध्ययन की शिक्षिका, जहाँ से ही उन्होंने स्नातक उपाधि अर्जित की थी, कुमारी एम. को वर्ष की मैनहटन शिक्षिका, 1985 में चुना गया था और अगले वर्ष उनका नामांकन वुमेन ऑफ कांशियन्स अवॉर्ड हेतु किया गया था जो नेशनल काउंसिल ऑफ वुमेन द्वारा दिया जाता है।

आह। माइलाग्रोस, क्या यह संभव है कि मैं तुम्हारा मोनोंगहेला नदी था ? कोई बात नहीं, तुम्हारी जैसी टीचर ढूँढे नहीं मिल सकती।

अध्याय - 4

हमें कम स्कूल चाहिये, अधिक नहीं

''हम भविष्य का निर्माण कर रहे थे'' उसने कहा, और हममें से किसी ने भी यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि हम कौन सा भविष्य बना रहे थे। और वो यहाँ है!

— द स्लीपर अवेक्स, एच.जी वेल्स

लेखक का यह पसंदीदा निबंध विशेष रूप से प्रथम संस्करण के लिये लिखा गया था, और अनेक बार पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले आम व्याख्यान के रूप में, प्रस्तुत किया गया।

I

अच्छे खासे समझदार लोगों की विस्मयकारी संख्या यह कठिनाई से देख पा रही हैं कि क्यों हमारे औपचारिक स्कूली नेटवर्क की परिधि व पहुँच को अब और नहीं बढ़ाया जाना चाहिये (उदाहरण के लिये स्कूल के कार्य दिवस या वर्ष), ताकि क्षयग्रस्त अमेरिकी परिवार की समस्याओं के निदान हेतु किफायती उपाय उपलब्ध हो सकें। उनकी प्राथमिकता का एक कारण जो मैं समझता हूँ वह यह है कि वे समुदायों और जालों (नेटवर्कों) के बीच, या परिवारों तथा नेटवर्कों के बीच के अंतर को समझ नहीं पाते हैं।

इस विभ्रम के कारण वे निष्कर्ष निकालते हैं कि खराब नेटवर्क को बदल कर नया नेटवर्क लाना श्रेष्ठ उपाय होगा। चूँकि मैं इस मूलभूत विचार का इतना प्रबल विरोधी हूँ जो यह मानता है कि नेटवर्क, परिवारों के कामचलाऊ विकल्प हैं, और हर किसी के भी विचार से और अधिक स्कूलों पर और अधिक पैसा लगेगा, अत: मैंने सोचा कि आपको एक स्कूल अध्यापक की अवधारणा के अनुसार बता दूँ कि क्यों हमें कम स्कूल चाहिये, अधिक नहीं।

जो लोग हमारे स्कूल संस्थानों के प्रशंसक हैं, वे प्राय: नेटवर्क की ही सराहना करते हैं, क्योंकि वे उसके सकारात्मक पक्ष को आसानी से देख पाते हैं, परंतु नकारात्मक पहलू को नहीं देख पाते। नेटवर्क, जो चाहे अच्छे भी हों समुदायों और परिवारों की जीवनशक्ति को नष्ट कर रहे हैं। वे मानवीय समस्याओं के उपचार हेतु यांत्रिक (संख्या या मात्रा में) निदान बताते हैं, जबकि टिकाऊ समाधान के लिये धीमी, आत्म-जागरूकता वाली जैविक प्रक्रिया, आत्म-खोज तथा सहभागिता की आवश्यकता होती है।

वजन कम करने की चुनौती पर गौर कीजिए। शीघ्र वजन घटाने के लिये मैकेनिकल तिकड़म ठीक है, किंतु मुझे बताया गया है कि ऐसी तिकड़म लड़ाने वाले पिंच्चानवे प्रतिशत लोग खुद को ही धोखा देते हैं। इस उपाय से घटाया गया वजन स्थायी नहीं होता, शीघ्र ही फिर से बढ़ जाता है। अन्य प्रकार के नेटवर्क समाधान भी उतने ही अस्थायी होते हैं : कानून की पढ़ाई करने वाले छात्रों का समूह नेटवर्क बनाकर कॉलेज परीक्षा में उत्तीर्ण भले ही हो जाए, किंतु वास्तविक वकालत प्राय: एकाकी और साथी विहीन तजुर्बा होता है।

अरस्तु ने, बहुत पहले जान लिया था कि *पूर्ण मानव बनने के लिये मानवीय मामलों की जटिल क्रियाओं में पूरी तरह से भाग लेना ही एकमात्र उपाय है;* इस मामले में वो अफलातून (प्लेटो) से अलग था। किसी विशेषज्ञ से परामर्श लेकर और निर्णय लेने के समग्र अधिकारों का समर्पण कर देने से जो हासिल होता है, उसकी तुलना में स्वेच्छा से किये गए कार्य की उपलब्धि कहीं अधिक होती है। यह खोज उस *असली* संसार का अद्‌भुत तानाबाना तैयार करती है जिसमें लोग डॉक्टरों, वकीलों और धर्मगुरुओं से तर्क करते है, कारीगरों को बतलाते हैं कि वे खुद क्या चाहते हैं, बजाय इसके कि कारीगर

जो बनाए उसे स्वीकार कर लें, हमेशा जो उपलब्ध हो उसी से अपना भोजन स्वयं बनाएँ, बजाए रेस्तराँ से खरीदने के या उसे डीफ्रास्ट करके, और इस तरह के कई *सहभागिता* के कार्य करें। वास्तविक समुदाय तो ऐसे परिवारों से मिलकर ही बनता है जो स्वयं इस भागीदारिता की रीति से काम करते हैं।

लेकिन नेटवर्कों को पूरे साबुत इन्सान की ज़रूरत नहीं होती, केवल उसके एक हिस्से की ही होती है। किंतु यदि आप किसी नेटवर्क में कार्य कर रहे हैं तो वह आपसे कहता है कि आप अपने बाकी सभी अंगों को दबा दें, केवल उस भाग को छोड़कर जिसमें नेटवर्क की रुचि हो – कितना अप्राकृतिक है यह, यद्यपि आप उसके अभ्यस्त हो जाते हैं। इसके बदले में नेटवर्क आपको वह कुशलता देता है, जिससे किसी सीमित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। यह, लेकिन शैतान का सौदा है, क्योंकि भविष्य में होने वाले किसी लाभ के आश्वासन पर, व्यक्ति को यहाँ अपनी वर्तमान मानवता की संपूर्णता का समर्पण करना पड़ता है। यदि आप ऐसे कई सौदे कर लेते हैं, तो आप अपने को अनेक विशेषज्ञ हिस्सों में बाँट लेंगे, जिनमें से कोई भी पूरी तरह से मानवीय नहीं होगा। और उसको पुन: एकीकृत करने के लिये अब समय नहीं है। विडंबना यह है कि यह अनेक सफल नेटवर्कों का प्रारब्ध है और इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तलाक अदालतों तथा विविध प्रकार के चिकित्सकों के लिये जबरदस्त व्यापार का सृजन करता है।

अत्यधिक नेटवर्किंग के कारण जो विखण्डन होता है, उसके फलस्वरूप मानवता का ह्रास होता है, एक भावना कि हमारी जिंदगियाँ नियंत्रण के बाहर जा रही हैं – क्योंकि वे वास्तव में जा रही हैं। अगर हम वर्तमान स्कूल व समुदाय के संकटों का समाधान करने की दृष्टि से सामना करें, कोई बेहतर रास्ता पाने की आशा से, तो हमें स्वीकार करना होगा कि बतौर नेटवर्क स्कूल आधुनिक जीवन के कष्टों के बहुत बड़े भाग के रचयिता हैं। हमें अधिक नहीं – कम स्कूल चाहिये।

मुझे मालूम है कि आप इसका कुछ सबूत चाहेंगे, हालाँकि करीब दस लाख लोग जो इन दिनों घर पर ही शिक्षा में हिस्सा ले रहे हैं, का प्रभाव हर किसी की चेतना पर परिलक्षित होने लगा है। जब उनकी सफलता के ब्योरों की चर्चा थोड़ी और होने लगेगी

तो वह राष्ट्र के ध्यान को भी आकर्षित करेगा ऐसी संभावना है। अत: आप लोगों में से जिन्होंने इसके विषय में न सुना हो कि अच्छी शिक्षा के लिये शासन द्वारा प्रमाणित स्कूलों में, शासन द्वारा प्रमाणित शिक्षकों की आपको आवश्यकता नहीं है, मुझे उस मशीनरी का किंचित भंडा फोड़ने दीजिये जो प्रमाणित स्कूलों को इतना खराब बना देती है। और याद रखें, यदि आप सोच रहे हैं कि ''परंतु ऐसा तो *हमेशा* से रहा है'' – नहीं ऐसा कभी नहीं रहा।

कारखानानुमा स्कूलों में अनिवार्य शिक्षा अभी हाल की घटना है, मेसाच्यूएट्स, न्यू यॉर्क की घटना है। याद करें, अभी कोई तीस वर्ष पूर्व, आप *स्कूलोपरान्त* थोक स्कूलों से बच सकते थे, अब बच पाना अत्यधिक कठिन है क्योंकि थोकबंद स्कूलिंग का नया प्रारूप – टेलीविज़न चारों ओर व्याप्त हो गया है जो स्कूलों की निगाह से बचे ध्यान को सोख लेता है। अत: टेलीविज़न जो हमारे नौजवानों का 1960 के पहले राष्ट्रीय उपचार का केवल विकृत रूप था, वह अब त्रासद थोक वाणिज्यिक मनोरंजन बन गया है, एक और भ्रमोत्पादक नशा जिसने थोक स्कूलिंग से निकलने के सारे रास्तों को अवरुद्ध कर दिया है।

यह एक ऐसी हकीकत है जिसकी प्राय: अनदेखी की जाती है, जब संस्थानीकृत परिवारों की सांप्रदायिक प्रकृति पर विचार किया जाता है जैसे स्कूल, बड़े निगम, महाविद्यालय, सेनाएँ, चिकित्सालय और सरकारी एजेंसियाँ – कि वे समुदाय है ही नहीं, मात्र नेटवर्क हैं। समुदायों से विपरीत विभिन्न नेटवर्क जैसा कि मैंने कहा था, लोगों को मिलने-मिलाने का बहुत पतला रास्ता उपलब्ध कराते हैं, और वह एक छोटे इंद्रधनुष के पार होता है, और ज़्यादा से ज़्यादा कुछ निर्दिष्ट एकरूपताओं में।

क्रिसमस पार्टी या कार्यालय के साफ्टबॉल खेल के बावजूद – नेटवर्कों के मानवीय घटक जब घर जाते हैं, तो अकेले जाते हैं। और आपात स्थितियों में सहकर्मियों से मिलने वाले मानवीय सहयोग के बावजूद – नेटवर्क के लोग जब कष्ट सहते हैं, तो अकेले ही सहते हैं, जब तक कि उनके पास दुख या कष्ट को बाँटने हेतु समुदाय या परिवार न हों।

कॉलेज के शव-सदृश समुदायों में भी, जहाँ हमारी सामुदायिकता का बड़ा आत्मीय दिखावा किया जाता है ; हममें से कौन ऐसा है जिसे स्नातक डिग्री लेने के पश्चात यह अनुभूति न हुई हो, कि हम अपने मित्रों के नाम या चेहरे तक भी ठीक से याद नहीं रख सकते ? और वे जिनकी हमें स्मृति है, भी क्या इच्छा रखते हैं कि उस यारी-दोस्ती को पुन: सक्रिय किया जाए ?

यह बड़ा पेचीदगी भरा विकास है, इसे लोग ठीक से समझ नहीं सके हैं कि नेटवर्कों में 'फिक्र करना' किसी भी महत्त्वपूर्ण नज़रिये से नकली होता है। इसके पीछे कोई दुर्भावना नहीं होती, किंतु कोई निष्कलुष भावनात्मक आकर्षण हो तो भी, नेटवर्क स्थितियों में मानवीय व्यवहार प्राय: किसी नाटक के प्रहसन जैसा मालूम पड़ता है – जहाँ कहानी की माँग के अनुसार प्रसंग लिखा और बनाया जाता है। और, इसलिये नेटवर्कों में अंतरंग क्षणों के उस टिकाऊ मूल्य का अभाव होता है जो समुदाय में पाया जाता है। आप में से जिन्हें सैनिक छावनी के जीवन या किसी खेल की टीम की याद होगी जहाँ कभी घनिष्ठ दोस्ती हुआ करती थी, और जो अब उन्हें भूल चूके होंगे, जो कभी आपस में बहुत घनिष्ठ थे, वे मेरी बात को समझ सकेंगे। इसके विपरीत, क्या कभी आप चाचा या चाची को भूल सके हैं ?

यदि नेटवर्कों में पहने जाने वाले मुखौटे से असली समुदाय को होने वाले नुकसान की ओर समय रहते ध्यान न दिया जाए, तो शिकार की आत्मा में ठीक वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है जो बहुत कुछ ''ट्राउट स्टार्वेशन'' (कर्बुरी मछली खाने के बाद भूख से मरने जैसी) से होती है, जो कभी बियाबानों में भटकते लोगों की एकमात्र खुराक हुआ करती थी। जबकि ट्राउट भूख की व्यथा का शमन करती है – और स्वादिष्ट भी होती है – उसे खाने वाला भी धीरे-धीरे उचित पौष्टिक तत्व न मिलने के कारण कष्ट उठाता है।

स्कूल जैसे नेटवर्क समुदाय नहीं होते, ठीक उसी प्रकार जैसे स्कूली प्रशिक्षण, शिक्षा नहीं होता। शिशु के कुल समय के पचास प्रतिशत पर अधिकार कर लेना, बच्चों को उनकी ही आयु के अन्य बच्चों के साथ कमरों में बंद कर देना, काम शुरू व बंद करने के लिये घंटियाँ बजाना, उन्हें एक ही बात सोचने के लिये कहना, एक ही समय में, एक ही तरीके से सोचने को कहना, उन्हें सब्जियों की भाँति अलग करना – और

तमाम अन्य शर्मनाक व मूर्खतापूर्ण रीतियों से पृथक करना। इस तरह ''नेटवर्क स्कूल'' समुदायों की पनपने की शक्ति को चुरा लेते हैं और उसके बदले में कुरूप यांत्रिकता भर देते हैं। इन स्थानों में कोई भी अपनी मानवीयता को अक्षुण्ण रखते हुए नहीं बच पाता, न तो बच्चे न तो शिक्षक, न प्रशासक और न अभिभावक।

समुदाय वह स्थान है जहाँ लोग निरंतर मिलते रहते हैं, अपनी मानवीय विविधताओं में: अच्छे से या गुस्से से, हर तरह से, ऐसी जगह उच्चतम प्रकार के जीवन को संभाव्य बनाती है – कामकाज में और सहभागिता में। यह अप्रत्याशित रूप से होता है, किंतु तब नहीं होता जब आप एक दशक से अधिक तक की समयावधि में वह सुनते रहते हैं जो दूसरे लोग बोलते हैं, और वह करते हैं जो वे करने को *बोलते* हैं, और स्कूलों के चलने के अनुसार उन्हें खुश रखने का प्रयत्न करते हैं। यह अन्तर एक जीवन्त वास्तविकता है, चाहे आप उस प्रशिक्षण से बचें या वह आपको जकड़ ले।

एक उदाहरण से आप इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे। शहरी सुधारकों के नेटवर्क बेघर आवारा लोगों की समस्या के लिये बैठक बुलाएंगे, किंतु समुदाय अपने आवारा लोगों को असली इन्सान मानेगा, अमूर्त नहीं, उन्हें रान, डेव या मार्टी कहकर बुलाएगा – समुदाय अपने लफंगों को भी उनके नाम से बुलाएगा। यही असली फर्क है।

समुदाय में लोग सैंकड़ो, अद्रश्य तरीकों से परस्पर व्यवहार करते हैं, और इससे जो भावनात्मक लाभ प्राप्त होता है वह प्रचुर एवं जटिल होता है। लेकिन नेटवर्क केवल समुदाय की व्यंग्य-चित्रात्मक नकल कर सकते हैं और अत्यंत सीमित लाभ दे सकते हैं।

मैं स्वयं भी कुछ नेटवर्कों से संबद्ध हूँ, किंतु केवल वे ही जिन्हें मैं पूर्णत: सुरक्षित समझता हूँ, वे नेटवर्क जो अपनी सांप्रदायिकता को अस्वीकार करते हैं, अपनी सीमाओं को स्वीकार करते हैं और मुझे निर्दिष्ट तथा आवश्यक कार्य करने में सहायक होते हैं। किंतु चमगादड़ की तरह खून पीने वाले – जैसे, स्कूली नेटवर्क, जो उस अवधि तथा ऊर्जा के बड़े हिस्से को काट कर अलग कर देते हैं जिसकी समुदाय एवं परिवार के निर्माण के लिये ज़रूरत है – *और* जो हमेशा और अधिक की माँग करते हैं – के लिये आवश्यक है कि एक भाला उनके हृदय को बींधते हुए पार कर दिया जाए और उनके ताबूत को कीलें ठोक कर बंद कर दिया जाए। औपचारिक स्कूलिंग की उन्मादी भूख ने

हमें पहले ही परिवार तथा समुदायों को बनाने की हमारी योग्यता को गंभीर रूप से घायल कर रखा है, उस बेशकीमती समय को छीन कर जिसकी हमें अपने बच्चों के साथ व्यतीत करने और बच्चों को हमारे साथ बिताने के लिये आवश्यकता है – इसीलिये मैं कहता हूँ कि हमें कम स्कूल चाहिये – अधिक नहीं।

इस बात से कौन इनकार करता है कि नेटवर्कों से कुछ काम हो जाते हैं ? परंतु उनमें उस योग्यता का अभाव होता है जो अपने सदस्यों की भावनाओं का पोषण करें। नेटवर्किंग के केंद्र में जो अति *बुद्धिवादिता* है वह उसी मानव स्वभाव की भ्रांत धारणा पर अवलंबित है जिसके फ्रांस का पुनर्जागरण तथा काम्टे आरोपी हैं। अपनी श्रेष्ठता के साथ हम मानव महज तर्कसंगत होने से अधिक शानदार हैं, अपनी श्रेष्ठता में हम बुद्धिवादिता से आगे निकल जाते हैं जब हम प्रक्रियाओं को अपने कार्यों से निचले स्तर पर शामिल करते हैं। यही वजह है कि कम्प्यूटर कभी लोगों की जगह नहीं ले पायेंगे, उन्हें हटा नहीं सकेंगे, क्योंकि कम्प्यूटर को संघनित करके बुद्धिवादी बनाया गया है, अत: उनकी सीमा भी कम है।

नेटवर्क लोगों को बाँटते हैं, पहले उन्हें आपस में और फिर एक-दूसरे से, इस आधार पर कि किसी एक कार्य को दक्षतापूर्वक करने का यही एकमात्र उपाय है। हो सकता है यह ठीक हो, परन्तु जिन्दा रहने के लिये अच्छा अनुभव करने का यह बेढंगा तरीका है। नेटवर्क लोगों को एकाकी बनाते हैं। वे अपने अमानवीय मेकेनिज़्म को सुधार नहीं सकते और फिर भी नेटवर्क के रूप में सफल होते हैं। इस विसंगति के पीछे कि नेटवर्क समुदाय के समान दिखाई देते हैं (पर है नहीं), थोक स्कूलिंग का विकृत रहस्य छिप कर बैठा है, और स्कूलों के अधिकार क्षेत्र में और अधिक वृद्धि करने पर सामाजिक विखण्डन की भयावह स्थितियाँ और भी ज़्यादा खतरनाक हो जाएँगी, जिसे सुधारा जाना चाहिये।

मैं इस बात को तब तक दोहराने की इच्छा रखता हूँ जब तक कि आप सुन-सुन कर सिर न धुनने लगें। नेटवर्क बहुत बड़ा नुकसान समुदायों के जैसे दिखने में कर रहे हैं और ऐसी आशाएँ जगाते हैं कि वे मनुष्य की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का प्रबंधन कर सकते हैं। वास्तविकता यह है कि वे ऐसा नहीं कर सकते।

यहाँ तक कि ऐसे स्वाभाविक हानिरहित संघ – जैसे ब्रिज क्लब, चेस क्लब, शौकिया अभिनय समूह या सामाजिक कार्यकर्ताओं के समूह भी, यदि वे संपूर्ण मैत्री का ढोंग बनाए रखते हैं तो भी अंत में वही अनुभूति सृजित करते हैं जो प्रत्येक महानगर निवासी की होती है कि वह भीड़ में बिलकुल अकेला है। हममें से किसने जो प्राय: अलग-अलग नेटवर्क से जुड़ा रहता है, इस भावना को महसूस नहीं किया है ? अनेक नेटवर्कों से जुड़े रहने से समुदाय वाली बात पैदा नहीं होती, चाहे कितनों से भी आप संबद्ध हों या फिर कितनी भी दफा आपके टेलीफोन की घंटी क्यों नहीं बजती हों।

नेटवर्क में आपको जो शुरुआत में मिलता है, बस वही आपको हमेशा के लिये प्राप्त होता है। नेटवर्क बेहतर या कमतर कभी नहीं होते। क्योंकि उनका सीमित उद्देश्य उन्हें सदैव एक सी अवस्था में रखता है उसमें कोई विकास संभव ही नहीं है। जो रोगजनित स्थिति अंतत: इन अक्सर होने वाले महीन मानवीय संपर्कों पुनरावृत्ति से विकसित होती है, वह अनुभूति यह है कि आपके ''मित्र'' या ''सहकर्मी'' आपके बारे में उससे अधिक फिक्र नहीं करते, जितनी आप उनके लिये कर सकते हैं; यह कि उन्हें यह जानने की कोई उत्सुकता नहीं है कि आप अपने जीवन का प्रबंध कैसे करते हैं, आपकी आशाओं, शंकाओं, विजयों और पराजयों के प्रति उनमें कोई जिज्ञासा नहीं होती। असली सच्चाई यह है कि ''मित्रगण'' जिन्होंने अपनी उदासीनता का जो झूठा विलाप किया है वे कभी आपके मित्र थे ही नहीं, सिर्फ नेटवर्क के साथी, जिनसे सचमुच एक समान रुचि से अधिक कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये।

परंतु हमारी सदैव अतृप्त समुदाय की आवश्यकता और उस समुदाय को नेटवर्क में पा न सकने की संभावना के चलते हम कोई भी निराकरण करने के लिये इतने अधीर होते हैं कि अपने आप को इन संपर्कों की प्रकृति से धोखा देते हैं। ''फिक्रमंदी'' का जो भी वास्तविक अर्थ हो, इसका मतलब सामान्य दोस्ती अथवा आपस में बाँटे गए हितों की विश्वस्त मित्रता से कहीं ज्यादा है।

II

मानव समाज की वृद्धि में, पहले परिवार आए, फिर समुदाय और काफी समय बाद वे

संस्थान आए जिनकी स्थापना समुदाय की सेवा करने हेतु की गई थी। अधिकांश संस्थात्मक भाषण जो क्या महत्त्वपूर्ण है का दावा करते हुए दिये जाते हैं – वे उन्हीं वैयक्तिक परिवारों से मूल्य उधार लेते हैं, जो साथ-साथ व भली प्रकार चलते हैं।

खासकर गत एक सौ पचास वर्षों में, संयुक्त राज्य में, संस्थात्मक जीवन के प्रवक्ताओं ने उस भूमिका की माँग की है जो परिवारों तथा समुदायों का सेवा की सीमा तक अतिक्रमण करती है। वे उसी तरह आदेश देते और निर्धारण करते हैं, जैसा कभी राजा लोग किया करते थे। यद्यपि उसमें भी एक अहम् फर्क है। प्राचीन राजा अपने आदेश और अपनी तुरही से आगे नहीं जाते थे, और आप जो चाहे कर सकते थे; किंतु आधुनिक संस्थानों के मामले में, तकनीक (टेकनालॉजी) की पहुँच हर जगह है – यदि आपके रहने का स्थान और परिवार आपको सुरक्षा नहीं दे सकता तो बचने का कोई रास्ता नहीं है।

संस्थानों के राजनैतिक दार्शनिकों का कहना है कि वे मानव जाति को कूच करने का आदेश देने हेतु परिवार के मुकाबले बेहतर हैं; इसलिये उनसे पीछे चलने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिये, अपितु उन्हें तो आगे होना चाहिये। संस्थात्मक नेता स्वयं को लाखों *संस्लिष्ट बच्चों* के *संस्लिष्ट* (सिंथेटिक) *महान पिता* मानने लगे हैं, मेरा अभिप्राय हम सब से है। यह सिद्धांत हमें एक अमूर्त किस्म के पारिवारिक संबंधों में बँधा हुआ देखता है, जिसमें राज्य ही असली माता और पिता हैं; और इसलिये उसका आग्रह है कि हमारी निष्ठा उसी के प्रति हो।

''यह मत पूछो'' राष्ट्रपति केनेडी ने कहा था, ''आपका देश आपके लिये क्या करता है, बल्कि यह पूछो कि *तुम* अपने देश के लिये क्या कर सकते हो।'' चूँकि इस प्रश्न में *''तुम''* वास्तविक तथा मानवीय है, और देश जो आपका कहलाता है वह मौखिक कल्पना का अति सारतत्व है, अत: यह समझना कठिन नहीं है कि राष्ट्रपति का आदेश संस्लिष्ट परिवार दर्शन की अभिव्यक्ति है जो ''राष्ट्र'' को ''परिवार'' से श्रेष्ठ साबित करता है। अगर आप इसमें कुछ गलत नहीं देखते हैं, तो इस बात की संभावना है कि आप भी यह विश्वास करते हैं कि थोड़ी-बहुत मरम्मत के बाद हमारे

स्कूल ठीक-ठाक हो जायेंगे। किंतु अगर आप में अपने आप के और परिवार के बारे में एक अजीब अहसास है कि वे किसी अमूर्त कल्पना से जुड़े हुए हैं, तो हम एक ही तरंग आयाम पर हैं। उस हालत में हम इस पर विचार करने के लिये तैयार हैं कि हमें कम स्कूल चाहिये, अधिक नहीं।

III

मैं संस्थानों के विशेषाधिकारों के मिथ्या दावों के घातक प्रभावों का परीक्षण करना चाहता हूँ, जो व्यक्तिगत तथा पारिवारिक दोनों जीवन पर पड़ते हैं, जिनकी घातकता उतनी ही गहरी है, चाहे वह दावा सरकार की ओर से आए, किसी निगम की ओर से या नेटवर्क के किसी अन्य प्रारूप से।

यदि हम अपनी नेटवर्कों की मूल बहस पर लौटें तो यह साफ हो जाता है कि हमारी प्रत्येक राष्ट्रीय संस्थाएँ ऐसे स्थान हैं, जहाँ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को एक-दूसरे से, समग्र मानवता के किसी सीमित पहलू के अनुसार अलग कर दिया जाता है: अनिवार्य स्कूली शिक्षा के मामले में आयु के अनुरूप, और कुछ अन्य रूपों में तथा दीगर संस्थागत क्षेत्रों में विविध छँटाई की रीतियों के द्वारा।

यदि इन संकीर्ण सीमाओं के भीतर के प्रदर्शन को ही सफलता का सर्वोच्च पैमाना माना जाए, उदाहरण के लिए किशोरावस्था के मुख्य उद्देश्य हेतु 'ए' औसत माना जाए – जो आकांक्षी की जरूरतों के लिये लगने वाले समय और ध्यान का अधिकांश भाग ले लेगा – और व्यक्ति के मूल्य का आकलन इस काल्पनिक 'ए' के अनुसरण की हार या जीत से किया जाता है; तो फिर ऐसा सामाजिक यंत्र बना लिया गया है जिनके साथ अर्थहीन और काल्पनिक बर्ताव को जोड़ दिया गया है, और यह निश्चित रूप से छात्रों का अमानवीकरण करेगा, उन्हें स्वयं उनके मानवीय स्वभाव से दूर कर देगा, तथा उनके तथा उनके अभिभावकों के बीच के प्राकृतिक रिश्ते को तोड़ देगा, जिनकी ओर सामान्य स्थिति में वे महत्त्वपूर्ण स्वीकृति के लिये देखते हैं।

थोक स्कूलिंग की दुनिया में आपका स्वागत है जो इस लक्ष्य को सर्वोच्च उपलब्धि के रूप में स्थापित करता है। क्या अब भी हमें और अधिक स्कूल चाहिये ?

जैसे-जैसे हम इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहे हैं, यह कहना सही होगा कि आज यूनाइटेड स्टेट्स संस्थानों का राष्ट्र बन गया है, जबकि कभी वह समुदायों का राष्ट्र हुआ करता था। आज बड़े नगरों को स्वस्थ सामुदायिक जीवन को बनाये रखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कुछ हद तक अजनबियों के आने-जाने के कारण और कुछ सीमा तक सिकुड़ते स्थान के कारण, कुछ हद तक विषैले पर्यावरण की वजह से, परंतु मुख्य रूप से संस्थानों और नेटवर्कों की सतत प्रतियोगिता के कारण कि कौन अधिकाधिक बच्चों और बूढ़ों को अपने कब्जे में लेता है, तथा हर किसी के आपसी समय पर एकाधिकार स्थापित करने के लिये। बच्चों और वृद्धों को स्थानों के क्रियाशील जीवन से पृथक करके, और क्रियाशील जनसंख्या को बच्चों तथा वृद्धों के जीवन से अलग करके, संस्थानों व नेटवर्कों ने पीढ़ियों के बीच बुनियादी अलगाव पैदा कर दिया है। इससे जो वेदना उत्पन्न होती है उसका कोई कृत्रिम उपचार नहीं है, किसी भी जीवन्त और संतुष्ट समुदाय का अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा जहाँ बच्चों व बूढ़ों को अलग-अलग बंद कर दिया जाता है।

यहाँ-वहाँ समुदाय के अस्तित्व में बने रहने के विकलांग संस्करण के संघर्ष नज़र आते हैं, जैसे उन स्थानों पर जहाँ सांस्कृतिक एकरूपता को उग्रतापूर्वक बचा कर रखा गया है – मसलन ब्रूकलिन के बेन्सनहर्स्ट में या पिट्सबर्ग के पोलिश हिल में – परंतु कुल मिलाकर शहरों और उपनगरों में ''समुदाय'' एक झीनी मरीचिका होकर रह गया है, जो सड़कों पर त्योहारों के ढोंग के रूप में दृष्टिगत होता है। यदि आप एक पड़ोस से दूसरे पड़ोस में चले गए हों, या एक उपनगर से दूसरे में, और जिन मित्रों को आप छोड़ आए हैं, उन्हें शीघ्र ही भूल गए हों, तब आपने उस तथ्य पर गौर किया होगा, जिसका मैंने अभी जिक्र किया है। संयुक्त राज्य की नब्बे प्रतिशत से अधिक आबादी अब पचास नगरीय समुहों में निवास करती है, वहाँ अच्छी तरह से समझी गई ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंतिम उत्पाद के तौर पर घनी बसाहट में रहते, वे एक अटूट सुस्पष्ट समुदाय को मिलने वाली पारस्परिक भूमिका से वंचित हैं। वे बड़ी हद तक अपने खुद के मानवीय हितों से दूर हैं। इसके अतिरिक्त इसके और क्या मायने हो सकते हैं कि हमारे पात्रता प्राप्त मतदाताओं में से केवल आधे ही मतदान हेतु पंजीकृत हैं? और उनमें से भी मात्र पचास

फीसदी मतदान करते हैं। द्विदलीय क्षेत्र में नागरिको का आठवाँ भाग ही सार्वजनिक अधिकारियों को निर्वाचित करने के लिये पर्याप्त है, यदि हम यह मान कर चलें कि वोट लगभग समान संख्या में बटेंगे। हम इस रास्ते पर काफी दूर आ गए हैं जिसे कभी कर्तव्य माना जाता था, उसे पुनर्परिभाषित करें, किंतु यही तो सामुदायिक जीवन से अलगाव है जिसकी शीघ्र प्राप्ति हो जाती है: लगभग हर बात के प्रति उदासीनता।

जब किसी को समुदाय की संस्थात्मक नकलें (प्रतिकृति) उपलब्ध कराई जाती हैं, नेटवर्कों की स्थिर खुराक – गैर स्वैच्छिक जैसे ''स्कूल'' या ''स्वैच्छिक'' जैसे कार्यस्थल जो मानवता के वैविध्य से रहित हैं – तो बुनियादी इन्सानी ज़रूरतों को गहनतम खतरे में डाल दिया जाता है। खतरा जो बच्चों के मामले में कई गुना अधिक बढ़ जाता है। संस्थानों के लक्ष्य चाहे जितने उचित तथा नेक इरादों वाले हों, व्यक्तिगत मानवीय लक्ष्यों की विलक्षणता के साथ वे भली भाँति सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकते। संस्थानों का प्रबंधन करने वाले लोग चाहे जितने भले हों, संस्थानों में आत्मा का अभाव होता है क्योंकि वे खाता-बही की विधि से मापते हैं। संस्थान उनके कर्मियों का कुल योग नहीं है, और न उनके नेतृत्व का, अपितु दोनों ही से स्वतंत्र हैं और तब भी उनका अस्तित्व बना रहेगा जब प्रबंधन पूरी तरह से बदल दिया जाए। वे विचार हैं, जो जीवित हो उठे हैं, विचार जिनकी सेवा में समस्त कर्मचारी सर्वमैकेनिज़्म हैं। इन विशालकाय नेटवर्कों का गहनतम उद्देश्य है नियमित करना और समानता (अपरिवर्तनीयता) सुनिश्चित करना है। चूँकि परिवार और समुदाय का दर्शन है उसकी परिधि के अंदर केंद्रीय विषय को विविधता देना, अत: जब कभी भी संस्थान निजी मामलों में ज़्यादा दखल देते हैं तो उनसे क्षति ही अधिक होती है। हमारे ध्यान को परिवार तथा समुदाय से संस्थानों व नेटवर्कों की ओर मोड़कर हम वस्तुत: अपने राजा की मशीन को तेल पानी दे रहे हैं।

IV

लगभग एक शताब्दी पूर्व एक फ्रांसीसी समाजशास्त्री ने लिखा था कि प्रत्येक संस्थान का पहला अघोषित लक्ष्य होता है खुद को बचा कर रखना और बढ़ना, न कि उस लक्ष्य

की चिंता करना, जिसकी औपचारिक रूप से उसने घोषणा की है। अत: शासकीय डाक सेवा का प्रथम लक्ष्य चिट्ठियों को लोगों तक पहुँचाना *नहीं* है बल्कि अपने कर्मचारियों की सुरक्षा तथा कदाचित उनमें से जो अधिक महत्त्वाकांक्षी हैं, उन्हें ऊपर उठने की साधारण सीढ़ी उपलब्ध कराना है। स्थायी सैन्य संगठन का पहला लक्ष्य राष्ट्रीय सुरक्षा का बचाव करना नहीं अपितु सदा के लिये राष्ट्रीय धन के एक भाग का अपने कार्मिको में वितरण करना है।

यही वह फिलिस्टाइन संभाव्यता थी – कि बच्चों को वेतन *के लोभ* में पढ़ाना यकीनन शिक्षकों की सुरक्षा का संस्थान बन जाएगा, छात्रों का नहीं – जिसकी सुकरात ने प्राचीन यूनान में इतनी कड़ी निंदा की थी।

यदि यह परिदृश्य आपको परेशान करता है, तो आइये न्यू यॉर्क नगर की सार्वजनिक स्कूल प्रणाली पर विचार करें, जहाँ मैं काम करता हूँ। यह इस पृथ्वी गृह के विशालकाय व्यावसायिक संगठनों में से एक है। जो शिक्षा इस अमूर्त अभिभावक द्वारा दी जा रही है वह किसी को भी पसंद नहीं है; फिर भी संस्थान का अपने ग्राहकों को, उसकी संदेहपूर्ण सेवा को स्वीकार करने हेतु बाध्य करने के अधिकार की सुनिश्चितता अभी भी पुलिस द्वारा की जाती है। और इसकी पहुँच को और आगे बढ़ाने के लिये आज भी तमाम ताकतें एकजुट हो रही हैं, जबकि सारे साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि यह शुरू से आज तक अपनी ऐतिहासिक यात्रा में एक दुर्घटना ही रहा है।

किन्हीं दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों के छोटे कस्बों और अन्य राष्ट्रीय पिछड़े क्षेत्रों की विचित्र प्रकार की मादकता का जो मूलभूत अंतर हमें देखने में आता है वह केवल शहरों या उपनगरों से भिन्न प्रकार के दृश्यों के कारण ही नहीं है, बल्कि इसलिये क्योंकि वहाँ के पारिवारिक जीवन में संस्थानों के हस्तक्षेप से बचाव की गारंटी है। बड़ा बाप ऐसे स्थानों को उतनी सूक्ष्मता से नहीं देखता है। जहाँ उसकी उपस्थिति सबसे अधिक महसूस की जाती है वह स्कूल ही है और वहाँ भी उसकी क्रोध, ईर्ष्या, स्पर्धा, 'ग्रेड' और कक्षा के प्रारूप में जाति पुष्टिकरण की धार को बेरहमी से पैना किया जाता है और घुट्टी में पिलाया जाता है परंतु वहाँ पर घरेलू जीवन तथा समुदाय इस विष की काट के तौर पर मौजूद हैं।

इस व्यापार को हम 'शिक्षा' कहते हैं – जबकि हमारा आशय 'स्कूलिंग' से होता है – यह नेटवर्क मूल्यों का पारंपरिक सामुदायिक मूल्यों से टकराव का रोचक उदाहरण है। एक सौ पचास वर्षों से शिक्षा अपने मुख्य उद्देश्य को प्रस्तुत करने में सफल हुई है जो था आर्थिक सफलता की तैयारी। अच्छी शिक्षा = अच्छी नौकरी, अच्छा पैसा, अच्छी चीज़ें। यह वैश्विक राष्ट्रीय ध्वज बन गया है जिसके वाहक हार्वर्ड और हाई स्कूल हैं। यह निदान अभिभावकों और छात्रों दोनों के लिये नियमित करना और डराना-धमकाना को आसान कर देता है क्योंकि विविधता या दार्शनिक सत्य किसी भी दृष्टिकोण से देखें, यह युति बिना किसी चुनौती के बरकरार है। यह जानना रोचक होगा कि, अमेरिकन फेडरेशन ऑफ टीचर्स दावा करता है कि उसके उद्देश्यों में से एक यह है कि व्यापारी समुदाय को इस बात पर राजी किया जाए कि वह लोगों को नौकरियाँ व प्रोन्नतियाँ स्कूल में दिये गए ग्रेडों के आधार पर दे ताकि ग्रेड = धनसूत्र (मनी फार्मूला) लागू हो, जैसा मेडिसिन और कानून के मामले में वर्षों तक की गई लाबीइंग (सांसदों, विद्यायकों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न) के फलस्वरूप लागू हुआ था। आज भी व्यापारी वर्ग अपने सामान्य ज्ञान के बल पर नियुक्तियों और पदोन्नतियों में पुराने आजमाए मार्ग पर चल रहा है, जिनमें प्रदर्शन और निजी आकलनों को तवज्जो दी जाती है, किंतु अधिक समय तक वे विरोध नहीं कर पाएँगे।

शिक्षा को आर्थिक माल के रूप में परिभाषित करने की मूर्खता समझ में आ जाती है जब हम स्वयं से प्रश्न करते हैं कि शिक्षा को उपभोग की ऐसी हवाई पट्टी मानकर और उसकी लंबाई और अधिक बढ़ाकर हमें क्या हासिल होगा जो इस धरती, वायु, और जल को खत्म किये जा रही है? क्या हम लोगों को पढ़ाते जाएँ कि वे सबूतों की उठती उत्ताल लहरों के बावजूद खुशी को खरीद सकते हैं, जो कि वो नहीं कर सकते? क्या हम नशीले पदार्थों के सेवन की आदतों, शराबखोरी, किशोरावस्था में आत्महत्याओं, तलाकों तथा निराशा के साक्ष्यों की अनदेखी कर सकते हैं जो गरीबों की अपेक्षा अमीरों के लिये ज्यादा बड़ा संकट है?

इन सवालों के मायने, जिसे हमने अपने आप से इतने समय से छिपा कर रखा था, बीमारी की समझ और उपचार जो हम खोज रहे हैं, दोनों को ही मार डाल रही है। अब इस समय थोक स्कूलिंग के उद्देश्य ही क्या होना चाहिये ? पढ़ना, लिखना और गणित तो उत्तर नहीं हो सकता, क्योंकि ठीक से पढ़ाएँ तो इन्हें सीखने में मात्र सौ घंटों से भी कम समय लगता है – और हमारे पास पर्याप्त सबूत हैं कि इन तीनों को व्यक्ति खुद ही सही समय और उचित वातावरण में सीख सकता है।

तो फिर हम क्यों बच्चों को गैर-स्वैच्छिक नेटवर्कों में बारह वर्षों के लिये अजनबियों के साथ छोड़ देते हैं? ऐसा नहीं है कि उनमें से कुछ धनी नहीं बनेंगे ? यद्यपि यदि ऐसा होता भी है, और मुझे शक है कि ऐसा होगा, फिर क्यों कोई समझदार समुदाय ऐसी शिक्षा को पक्के तौर पर गलत नहीं मानेगा ? यह लोगों को विभाजित करती है, उनका वर्गीकरण करती है, माँग करती है कि वे अनिवार्य रूप से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करें, और असफल होने वालों को यह सार्वजनिक रूप से उनकी पहचान निम्न श्रेणी के माल के बतौर करती है, अपमानित करती है, और विजेताओं के लिये मूल तर्क यह है कि वे और अधिक बकवास क्रय कर सकते हैं। मैं नहीं मानता कि कोई भी व्यक्ति जो इस बाबत सोचता है, उसे इस मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष से बेचैनी नहीं होती होगी। मैं ऐसा सोचने से खुद को नहीं रोक पाता कि यदि हम केवल एक सवाल का जवाब ढूँढ लें कि आखिर वह क्या है जो हम इन बच्चों से चाहते हैं, जिन्हें हम बंद कर देते हैं, हमें एकाएक पता चलेगा कि कहाँ पर हमने गलत मोड़ ले लिया है। मुझे अमेरिकी कल्पनाशीलता और सूझबूझ पर बहुत भरोसा है कि वह ऐसे बिंदु पर आकर किसी बेहतर पथ पर आ जाएगा – वस्तुत: बेहतर रास्तों का एक संपूर्ण सुपर बाज़ार।

एक बात मैं जानता हूँ, हममें से अधिसंख्यों ने, जिन्होंने प्रेम से पगे परिवार का स्वाद चखा है, भले ही थोड़ा ही चखा हो, चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारा भाग हो। एक और बात मैं जानता हूँ कि अंततोगत्वा आपको एक ऐसे स्थान का भाग होना पड़ेगा – उन टीलों, गलियों, पानी और लोगों का भाग – यदि नहीं तो आपको सदा के लिये देश से निर्वासित की तरह बहुत बहुत पछतावे वाली ज़िन्दगी जीना पड़ेगी। अपने आप के लिये अर्थ की खोज और अपने उद्देश्य की संतुष्टि की खोज का बहुत बड़ा हिस्सा कि यह शिक्षा है क्या। बच्चों को दुनिया से अलग बंद कर देने से यह कैसे संभव हो सकेगा, यह अलबत्ता मैं नहीं जानता।

V

समुदायों और संस्थान में एक बुनियादी अंतर यह है कि समुदायों की प्राकृतिक सीमाएँ होती हैं ; या तो वे बढ़ना बंद कर देते हैं या मर जाते हैं। इसके पीछे कारण है : सर्वोत्तम

समुदायों में हर कोई विशेष व्यक्ति होता है जो कभी न कभी हर किसी की चेतना को प्रभावित करता है। इस लगातार ध्यान दिये जाने से अमीर या गरीब, सभी को अहसास होता है कि वे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि महत्त्व की अवधारणा तभी प्रकट होती है जब अन्य लोग आपकी और ध्यान दें। हाँ, आप ध्यान खरीद भी सकते हैं, पर उसमें वह बात नहीं होगी। छद्म सामुदायिक जीवन, जहाँ आप दूसरों के साथ, बगैर उनकी और ध्यान दिये रहते हैं, और जहाँ आपको हर वक्त अजनबियों का आचरण आक्रामक प्रतीत होता हो, वह उसका ठीक विपरीत है। छद्म सामुदायिक जीवन में, आप अधिकतर 'कोई नहीं' रहते हैं, और 'कोई नहीं' रहना भी चाहते हैं क्योंकि अन्य लोग आपके लिये विविध खतरे पैदा कर देंगे यदि वो आपकी उपस्थिति महसूस करते हैं। छद्म समुदाय में आपके लिये ध्यान आकर्षित करने का एक ही उपाय है कि आप उसे खरीदें क्योंकि वहाँ उदासीनता का ही वातावरण रहता है। छद्म समुदाय एक भिन्न प्रकार का नेटवर्क ही है; इसकी मैत्रियाँ व निष्ठाएँ अस्थायी होती हैं, इसकी समस्याओं को दुनिया भर में किसी अन्य की समस्याएँ माना जाता है (कोई अन्य जिसे उन्हें सुलझाने के लिये पैसे *दिये* जाएँगे) : उसके बच्चे और बुजुर्ग खीझ पैदा करने वाले समझे जाते हैं, और सबसे आम सपना जो लोग वहाँ देखते हैं वह है कि कब यहाँ से किसी बेहतर जगह पर चले जाएँ, इस प्रकार की सौदेबाजी निरंतर चलती रहती है।

वास्तविक समुदाय के उलट, छद्म समुदाय व अन्य विस्तृत नेटवर्क जैसे स्कूल अनिश्चित काल तक बढ़ते ही जाते हैं, जब तक कि उनके लिये बढ़ना संभव हो। ''अधिक'' भले ही ''बेहतर'' न हो, परंतु वह उन लोगों के लिये हमेशा लाभकारी है जो नेटवर्किंग के ज़रिये अपनी जीविका चलाते हैं। इसी कारण आज स्कूलिंग को और अधिक बढ़ाने के लिये चीख-चीख कर कहा जा रहा है। बहुत सारे लोग, बहुत सारा पैसा कमाएँगे यदि स्कूलों की ऐसी ही बढ़ोतरी चलती रहे।

सामुदायिक तथा पारिवारिक जीवन के जटिल और कभी-कभी न नापे जा सकने वाले संतोष के विपरीत नेटवर्कों की सफलता को सदा एकाकी गणितीय प्रदर्शनों से नापा जाता है। कितने 'ए' मिले ? कितना वजन कम हुआ ? कितनी पूछताछ हुई ? प्रतिस्पर्धा

नेटवर्कों का जीवन तत्व है, और प्रदर्शन के संख्यात्मक श्रेणीकरण द्वारा जो शुद्धता प्रस्तुत की जाती है, वह उसकी पसंदीदा शैली है।

व्यापारों में जब गुणवत्ता की प्रतिस्पर्धा होती है, तब वह (जब वास्तव में ऐसा होता है) सामान्यत: ग्राहकों के लिये अच्छी बात होती है ; वह व्यापार को चौंकन्ना रखता है, और वह श्रेष्ठ प्रदर्शन करता है। स्कूल जैसे संस्थान के अंदर की प्रतियोगिता लेकिन एकदम अलग चीज़ है। स्कूल में जिस बात के लिये स्पर्धा होती है वह शिक्षक की दयादृष्टि होती है, और उसे अनेक प्रकार के अवास्तविक मापदंडों के द्वारा पाई या खोई जा सकती है। वह हमेशा थोड़ी निरंकुश और कभी-कभी उससे भी अधिक घातक होती है। वह ईर्ष्या, असंतोष और जादू पर विश्वास पैदा करती है। अध्यापकों को भी प्रशासकों का कृपापत्र बनने के लिये प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है, जिसके बदले अच्छी या खराब कक्षा, अच्छा या खराब कक्ष, उपकरणों तक पहुँच होना या न होना एवं आइ ाकारिता, आदर या अधीनस्थता प्राप्त होती है। स्कूल की संस्कृति केवल भौतिक पुरस्कारों और सज़ाओं को बढ़ावा देती है : ''ए'', ''एफ'', ''प्रसाधनकक्ष पास'', ''गोल्ड स्टार'', ''गुड'' श्रेणियाँ, फोटो कॉपी मशीन के उपयोग की अनुमति। जो कुछ भी हम जानते हैं, कि क्यों लोग उन बातों को जानने हेतु अपना श्रेष्ठ झोंक देते हैं, वह इन स्थानों के अंदर विरोधाभास या प्रतिकूलता के रूप में दिखलाई देता है।

सत्य भी समुदायों और नेटवर्कों के बीच की महत्त्वपूर्ण विभाजक रेखा है। यदि समुदाय में आप अपनी बात नहीं रखते, तो हर किसी को पता चल जाता है और तब आपके लिये बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है। किंतु व्यक्तिगत लाभ के लिये झूठ बोलना सभी बड़े संस्थानों में काम करने का मानक होता है; और स्कूलों में इसे खेल का हिस्सा समझा जाता है। अभिभावकों को अधिकतर झूठ या अर्धसत्य बताया जाता है, क्योंकि सामान्यत: उन्हें विरोधी माना जाता है। कम से कम जितने भी स्कूलों में मैंने काम किया है, वहाँ यही देखा है। केवल महामूर्ख कर्मचारी ही झूठ का सहारा नहीं लेते हैं, पकड़े जाने पर दंड के कोई मायने नहीं होते और सफलता के पारितोषिक बहुत हो सकते हैं। संस्थानों में जो कुछ गलत होता है, उसके विरुद्ध सीटी बजाना बेरहमी से प्रताड़ित होने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। सीटी बजाने वाले किसी भी संस्थान

में पदोन्नत नहीं किये जाते, क्योंकि एक बार उन्होंने जनता के हित में कुछ किया, तो भविष्य में दोबारा भी कर सकते हैं।

राइम का गिरजाघर मेरी जानकारी में इस बात का सबसे अच्छा सबूत है कि समुदाय क्या कर सकता है, और हमारी कितनी हानि होती है जब हमें इन मानवी आश्चर्यों तथा सामाजिक मशीन जिसे हम ''नेटवर्क'' कहते हैं के इस अंतर का ज्ञान नहीं होता है। राइम को रात-दिन बिना बिजली चलित औजारों, उपकरणों से काम करके लोगों ने सौ वर्षों में बनाया था। हर किसी ने स्वेच्छा से काम किया था और कोई भी गुलाम मजदूर नहीं था। किसी भी स्कूल ने गिरजाघर कैसे बनाये को विषय के रूप में नहीं पढ़ाया था।

किस चीज़ ने लोगों ''में'' सौ वर्षों तक मिलकर काम करने की दीवानगी पैदा की थी ? वह जो कुछ भी हो, पर इस योग्य अवश्य है कि हम उससे कोई सबक लें। यह तो हम जानते हैं कि मजदूर परिवारों और मित्रों के रूप में एकजुट थे, और बतौर मित्र उन्हें यह भी मालूम था कि चर्च बनाने के लिये क्या करें। पोप और आर्क-बिशपों को इससे कुछ लेना-देना नहीं था। गोथिक स्थापत्य कला का अविष्कार भी विशुद्ध प्रेरणा से हुआ था। गोथिक गिरजाघर एक प्रकाश स्तंभ की भाँति खड़ा है और बिना किसी दबाव के इनसानी संघ के लिये जो संभव है उसे आलोकित कर रहा है। यह एक ऐसा नाप-मापक हमें उपलब्ध करवाता है जिससे हम अपनी जिंदगियों को नाप सकते हैं।

राइम्स में, खेतिहर मजदुरों, कृषकों और देहाती लोगों ने विशाल स्थानों को विश्व की सर्वाधिक अतुलनीय स्टेन्डग्लॉस की खिड़कियों से भर दिया, किंतु उन्होंने उनमें से किसी पर भी अपना नाम अंकित नहीं किया। कोई नहीं जानता कि उनकी संरचना किसने की या किसने उन्हें बनाया, क्योंकि हमारी आधुनिक किस्म की संख्यात्मक डींगे हाँकने का चलन तब नहीं था, जो आज सामुदायिक भावना के रूप में अब भी हमारे सामने है, इतनी शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी, वे अभी भी बताते हैं कि मनुष्य होने का क्या अर्थ है।

VI

समुदाय परिवारों और मित्रों से मिलकर बनते हैं, जो पारिवारिक संबंधो को भाइयों व

बहनों का अवैतनिक समूह बनाकर उसके अर्थ को विस्तार देते हैं। वे सामान्यता और उत्तरदायित्वों के जटिल रिश्ते हैं जो घरेलू वातावरण की परिधि से आगे जाकर साधारणीकरण करते हैं।

जब समुदाय में परिवार का हिस्सा रहने से जो एकीकरण का भाव सृजित होता है, अगर वह न हो पाए, तो एकाकी जीवन व्यतीत करने की बाध्यता को स्वीकार करने के अतिरिक्त एक ही विकल्प बचा रहता है कि वर्तमान में उपलब्ध तमाम नेटवर्कों में किसी कृत्रिम एकीकरण की तलाश की जाए। पर यह खराब सौदा है! मानवीय संघों के कार्यक्षेत्र के भीतर नकली एकीकरण – उन कॉलेज छात्रावासों अथवा बिरादरियों को देखिये – ऊपर से ये मज़बूत दिखाई देते हैं पर अन्दर से वास्तव में बहुत कमज़ोर हैं, बाहर से देखने में परस्पर मजबूती से गुंथे किंतु उनके धागों के सिरे खुले होते हैं, दिखने में स्थायी पर हैं प्राय: क्षण-भंगुर। और उनका समायोजन भी दोषपूर्ण होता है; लोगों की क्या ज़रूरत है वह नहीं, अपितु मुखौटा ही ऐसा चढ़ा रहता है मानो वह उनकी ज़रूरतों पर खरा उतरते हों।

स्कूल के संसार में आपका स्वागत है। हमें स्कूलों में सुधार के बारे में चिंतन आरंभ करना चाहिये। इन स्थानों को शरीर के अंदर की गाँठ के जैसा काम करने से रोकना होगा जो अभेद्य आंतरिक निकाय हैं, जो हमारा धन, हमारे बच्चे और हमारा समय छीन लेते हैं, और बदले में कुछ नहीं देते। क्या हमें और *अधिक* स्कूल चाहिये ?

हाल ही के वर्षों में मैंने अपना काफी सिर इस बात पर खपाया है कि अनिवार्य स्कूल नेटवर्क को किसी प्रकार से भावनात्मक रूप से लाभदायक समुदाय में बदला जाए, क्योंकि इसका ठीक उल्टा करने का एक अभियान शुरू किया गया है, जिसमें बच्चे के परिवार का समय, समुदाय का समय और निजी समय को और भी बड़ी मात्रा में छीना जाएगा। प्रेस और टी.वी में ट्रायल गुब्बारे लगातार उड़ाए जा रहे हैं, अर्थात् कुछ बड़े समूह अनिवार्य स्कूलिंग की पहुँच को और दूर तक ले जाने की फिराक में हैं जबकि पहले से ही उनका इतना भयानक रेकार्ड है। मेरे यहूदी मित्र उसे ''अड़ियलपना'' (चुट्ज्पाह) कहेंगे, पर मैं उसे एक अनुक्रम के रूप में लेता हूँ कि ये लोग कितने आश्वस्त हैं कि वे ऐसा कर सकेंगे।

मैंने सुना है कि स्कूल यह तर्क दे रहे हैं कि साल भर नौ-से-पाँच ऑपरेशन या नौ-से-नौ तक के ऑपरेशन ज़्यादा बेहतर मूल्य के होंगे। अब हम कृषक समुदाय नहीं रह गए, उनका कहना है कि हम बच्चों को फसले उगाना सिखाएँ। स्कूलों की इस नई व्यवस्था में रात का भोजन दिया जाएगा, सायंकालीन मनोरंजन का प्रबंध होगा, चिकित्सा, स्वास्थ्य की देखभाल व अन्य प्रकार की विविध सेवाओं का माकूल इंतजाम होगा, जो संस्थान को बच्चों के लिये एक कृत्रिम परिवार में तब्दील कर देगा, जो असली परिवार से बेहतर होगा, क्योंकि अनेक निर्धन छात्र भी होंगे – और यह कमज़ोर परिवारों के पुत्रों व पुत्रियों के लिये क्रीड़ास्थल को समतल कर देगा।

इसके बावजूद बतौर स्कूल शिक्षक मुझे लगता है कि स्कूल ही कमज़ोर परिवारों और कमज़ोर समुदायों के मुख्य कारक हैं। वे अभिभावकों और बच्चों को अत्यावश्यक पारस्परिक व्यवहार से अलग करते हैं, अत: उनमें एक-दूसरे के जीवन के प्रति वास्तविक जिज्ञासा नहीं पनप पाती। स्कूल परिवार की मौलिकता का दमन करते हैं क्योंकि वे परिवार विषयक तर्कसंगत विचारों में लगने वाले अहम् समय को उससे छीन लेते हैं – और फिर परिवार पर दोषारोपण करते हैं कि वह अच्छा परिवार बनने में असफल रहा है। यह उस दुर्भावना रखने वाले व्यक्ति की तरह है जो डेवलपिंग रसायन से तस्वीर जल्दी निकाल लेता है और फोटोग्राफर पर अक्षम होने का दोष मढ़ता है।

मेसाच्यूएट्स के एक सीनेटर ने कुछ समय पहले कहा था कि उनके राज्य में साक्षरता की दर अनिवार्य शिक्षा लागू होने के पूर्व ऊँची थी, बाद में कम हो गई। यह निश्चित रूप से विचारणीय मुद्दा है, स्कूल अपनी अधिकतम योग्यता का बहुत पहले स्पर्श कर चुके हैं, अर्थात् स्कूलों के लिये ''और'' का विचार हालात को, बजाय सुधारने के बिगाड़ देगा।

VII

शिक्षा जो भी चीज़ हो, वह आपको विलक्षण व्यक्ति बनाए, अनुगामी नहीं ; वह आपको मौलिक विचारों से वेष्ठित करे ताकि आप बड़ी चुनौतियों का सामना कर सकें; वह आपको इस योग्य बनाए कि आप उन मूल्यों की खोज कर सकें जो आपका आजीवन पथ प्रदर्शन करे; वह आपको आध्यात्मिक दृष्टि से संपन्न बनाए, ऐसा व्यक्ति जो आप

जो भी करते हों उससे प्रेम करे, आप जहाँ भी हों, और जिसके भी साथ हों, वह आपको सिखाए कि महत्त्वपूर्ण होना क्या है, कैसे जिया जाए और कैसे मरा जाए।

युनाइटेड स्टेट्स में शिक्षा के रास्ते में सामाजिक यांत्रिकी का सिद्धांत आ गया है, जो कहता है कि बढ़ने के लिये वही *एकमात्र सही रास्ता* है। यह एक प्राचीन मिस्री विचार है जो पिरामिड में परिलक्षित होता है, जहाँ दृष्टि शीर्ष पर रखी जाती है। हर कोई एक निर्दिष्ट पत्थर है, जिसकी पिरामिड में एक निर्धारित जगह है। यह सिद्धांत अनेक रूपों में प्रस्तुत किया जा चुका है, किंतु मूल बात यह है कि वह उन मस्तिष्कों की वैश्विक दृष्टि दर्शाता है जो अन्य लोगों के मस्तिष्कों पर नियंत्रण रखने की सनक से ग्रसित हैं; जिन्हें प्रभुता संपन्न होने की सनक है तथा जो उस प्रभुत्व को अक्षय रखने हेतु हस्तक्षेप की रणनीतियाँ बनाते रहते हैं।

यह फराओ के लिये सही रहा होगा, किंतु हमारे लिये निश्चित रूप से सही नहीं रहा। सच तो यह है कि इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि कोई एक विचार सभी बच्चों के विकसित होने के काल पर भारी पड़े, और फिर भी समय पर एकाधिकार स्थापित करने वाले सदैव पुरस्कार जीतने के बहुत करीब नहीं रहे। फ्रांसिस बेकन ने मधुमक्खियों के महान छत्ते की गुनगुनाहट को बहुत पहले देख लिया था, और एच.जी.वेल्स ने *''द स्लीपर अवेक्स''* में वैसी तीव्र शंख ध्वनि नहीं पैदा की, जैसी आज पैदा हो रही है।

निजता, विविधता और व्यक्तित्व की रक्षा की अमेरिकी भावना के केंद्र में वह उपाय निहित है जिसके अनुसार हम बच्चों का लालन-पालन करते हैं। *बच्चे जैसा रहते हैं वैसा सीखते हैं।* बच्चों को कक्षा की चारदीवारी में डाल दीजिये और वे अपना जीवन उस अदृश्य पिंजरे में समुदाय के जीवन से वंचित रहकर जियेंगे, बच्चों को घंटियों और घंटों से निरंतर त्रस्त कीजिये और वे जान जाएँगे कि कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, शौचालय जाने के प्राकृतिक अधिकार के लिये उन्हें अनुरोध करने को कहिये और वे झूठे तथा खुशामदी बन जाएँगे, उनका मजाक उड़ाइये और वे मानव समाज से अलग हो जाएँगे, उन्हें शर्मिन्दा कीजिये और वे सैकड़ों तरीके बदला लेने के ढूँढ लेंगे। बड़े, वृहद् संस्थानों में सिखाई गई आदतें अत्यंत घातक होती हैं।

इसके विपरीत वैयक्तिकता, परिवार और समुदाय, अपनी परिभाषा से ही एकल संगठन की अभिव्यक्ति होते हैं। वहाँ कभी भी ''एक-ही-सही-रास्ता'' की सोच वृहद् पैमाने पर नहीं होती। निजी समय अपनी निजी पहचान के विकास हेतु परमावश्यक है; और उतना ही निजी समय निजी मूल्यों की आचार संहिता के विकास हेतु आवश्यक है जिसके बगैर हम सही अर्थों में व्यक्ति हो ही नहीं सकते। बच्चों और परिवारों को शासकीय निगरानी तथा दादागिरी से थोड़ी छूट अवश्य मिलनी चाहिये यदि उनकी स्वाभाविकता को विकसित करना है जो उनका अंग है। इसके बिना स्वतंत्रता निरर्थक है।

मेरे अध्यापन काल का सबक यह है कि थोक शिक्षा का सिद्धांत और संरचना दोनों ही घातक रूप से दोषपूर्ण हैं, वे हमारे राष्ट्रीय विचार के लोकतांत्रिक तर्क के सहायक नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी निष्ठा लोकतांत्रिक सिद्धांत के प्रति है ही नहीं। आज भी लोकतांत्रिक सिद्धांत किसी भी देश के लिये सर्वश्रेष्ठ विचार है, भले ही हम उस रीति से न रह रहे हों।

थोक शिक्षा उचित समाज का निर्माण नहीं कर सकती, क्योंकि उसका दैनिक आचरण चालाकी भरी प्रतिस्पर्धा, दबाना और धमकाना है। जिन स्कूलों को हमने विकसित होने दिया, वे आत्मिक (अभौतिक) मूल्यों की शिक्षा नहीं दे सकते, वे मूल्य जो धनवान या निर्धन, हर किसी के जीवन को अर्थ प्रदान करते हैं, क्योंकि स्कूलों की बनावट को इनाम और धमकी, गाजर या बेंत के जटिल आदर्शों से बाँध कर रखा गया है। शासकीय पक्षपात, श्रेणी या अन्य घटिया तरह की अधीनस्थता का शिक्षा से कोई नाता नहीं है, वे गुलामी के तामझाम हैं, स्वतंत्रता के नहीं।

थोक शिक्षा बच्चों को नुकसान पहुँचाती है। हमें अब और स्कूल नहीं चाहिये और इस बहाने से भी नहीं कि यही वास्तविक शिक्षा है यह हमारी जेब पर भी डाका डाल रही है, जैसे कि सुकरात ने हज़ारों वर्ष पूर्व भविष्यवाणी की थी। वास्तविक शिक्षा को पहचानने का सबसे आसान तरीका यह है कि वह अधिक महँगी न हो और महँगे संसाधनों और उपकरणों पर आश्रित न हो। अनुभव जो इसका उत्पादन करता है और स्व-जागरूकता जो इसे चलाती है वो लगभग निशुल्क है। अब शिक्षा पर एक डॉलर भी खर्च करना कठिन है। लेकिन स्कूलिंग अजीब आपाधापी है जो निरंतर पैनी होती जाती है।

आज से पैंसठ साल पहले, इस देश के अग्रणी गणितज्ञों में से एक, उसके महानतम दार्शनिक और इंग्लैंड नरेश के निकट संबंधी बर्ट्रेंड रसेल ने देखा था कि संयुक्त राज्य में थोक स्कूलिंग में अत्याधिक अलोकतांत्रिक इरादा है, कि वह राष्ट्रीय एकता को कृत्रिम ढंग से करने की योजना है, जिसमें मानवीय विविधता को निकाल दिया जाता है, उस साँचे या भट्टी को बाहर करने की योजना जो विविधता उत्पन्न करती है। लार्ड रसेल के अनुसार थोक स्कूलिंग से ऐसे *अमेरिकी* छात्र तैयार किये जा रहे हैं जिन्हें कोई दूर से ही पहचान ले: बौद्धिकता विरोधी, मूढ़, आत्मविश्वास से रहित और जिनमें, रसेल के शब्दों में ''आंतरिक स्वतंत्रता'' नहीं होती जो अन्य किसी भी देश के छात्रों में होती है, जिन्हें वे जानते हैं, चाहे वे अतीत के हों या वर्तमान के। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त ये छात्र ऐसे नागरिक बनते हैं जिनमें बहुत महीन ''मास केरेक्टर'' होता है, जो शानदार और सौंदर्य भावना की ओर हिकारत से देखते हैं और जिनमें उनके अपने जीवन के निजी संकट के लिये पर्याप्तता नहीं होती।

अमेरिकी की राष्ट्रीय एकता, अमेरिकी जीवन की सदा से मुख्य समस्या रही है। वह हमारे कृत्रिम आरंभ में और महाद्वीप की विस्तृत भूमि पर विजय की भूख में ही अंतर्निहित थी। वह 1790 में भी सत्य थी और अब दो सौ वर्षों के बाद कदाचित पहले से अधिक सत्य है। गृहयुद्ध के दौरान हमने एकता को तेज़ गति से पाने हेतु शार्टकट्स को कृत्रिम साधनों द्वारा आजमाना शुरू किया। अनिवार्य शिक्षा एक ऐसी, शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पगडंडी (शार्टकट) थी। बोस्टन उपनिवेश में जॉन काटन ने कहा, ''बच्चों को पकड़ो'', और यह इतना अच्छा विचार लगा कि अंतत: वे लोग भी जो ''एकता'' की ओर धार्मिक विचार की भाँति देखते थे, ने भी वही किया। इसके तीव्र विरोध को शांत करने में तीस वर्ष लग गए लेकिन 1880 के दशक में ''वे'' सफल हुए तथा बच्चों को ले उड़े। गत एक सौ दस वर्षों से ''एक-ही-सही-रास्ता'' वाली भीड़ विचार करती रही कि शिशुओं का क्या किया जाए, और आज भी कर रही है।

शायद अब समय आ गया है कि कुछ नया आजमाया जाए। ''अच्छी बाड़ अच्छे पड़ोसी बनाती है'', राबर्ट फ्रास्ट ने कहा था। समुदाय में साथ मिलकर रहने का प्राकृतिक समाधान यह है कि पहले बतौर व्यक्ति और परिवार रहना सीखें। जब

आप स्वयं अपने बारे में अच्छा महसूस करेंगे तभी दूसरों के बारे में आपको अच्छी अनुभूति होगी।

किंतु हमने एकता की समस्या पर यांत्रिकीय ढंग से प्रहार किया है, जिससे की हम तमाम परिवारों और समुदायों को एक विशाल एकरूपता लाने वाली संस्थात्मक छतरी के नीचे लाकर, यांत्रिकी समाधान बलात् लागू कर सकें जैसे कि अनिवार्य स्कूल। इस योजना का परिणाम यह हुआ कि लोकतांत्रिक विचार जो कि हमारे राष्ट्रीय प्रयोग के एकमात्र औचित्य थे, के साथ छल किया गया।

शार्टकट के प्रयोग अभी भी जारी हैं, और वे परिवारों तथा समुदायों को उसी तरह तबाह कर रहे हैं, जैसे तब करते थे। इन चीज़ों का पुनर्निर्माण कीजिये और बच्चे स्वयं को, हमारी सहायता से शिक्षित करना आरंभ कर देंगे, ठीक उसी प्रकार जैसा वे राष्ट्र के आरंभिक दिनों में करते थे। अभी उनके पास सिवाय धन के अतिरिक्त कुछ करने के लिये काम है ही नहीं, और यह (धन) कभी भी प्रथम श्रेणी का उत्प्रेरक नहीं रहा। इन संस्थात्मक स्कूलों को तोड़ दीजिये, पढ़ाने के लिये प्रमाण पत्रों की आवश्यकता को समाप्त कर दीजिये, जिस किसी की भी पढ़ाने में रुचि हो वो अपने ग्राहकों को पढ़ाए, इस कुल व्यापार का निजीकरण कर दीजिये – मुक्त व्यापार प्रणाली पर भरोसा कीजिए। मुझे पता है कि ऐसा कहना सरल और करना कठिन है, किंतु हमारे पास और विकल्प ही क्या है ? हमें कम स्कूल चाहिये, अधिक नहीं।

अध्याय - 5

धर्मसभात्मक सिद्धांत (द कांग्रीगेशनल प्रिंसिपल)

हमारी स्कूल समस्या के अमेरिकी निदान का आरम्भ

यह वार्ता, मेरी घुमन्त् फड़फड़ाहट का सर्वाधिक लोकप्रिय तीर, किंचित परिवर्तित रूप में, 'द मेन स्कालर' में निबंध के रूप में आरंभ हुआ था।

यह अति यथार्थवादी समय है। वैज्ञानिक स्कूल प्रतिष्ठान, राष्ट्रीय मानकों, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम और बेहतर राष्ट्रीय मानकीकृत परीक्षा के रूप में और अधिक केंद्रीकरण की योजनाएँ प्रस्तुत करता रहता है। हर ओर जादुई वादे किये जा रहे हैं, जवाब है मशीनें; वृहद हस्तक्षेप उत्तर है; नए प्रारूप में प्री-स्कूलिंग उत्तर है। डेढ़ सौ सालों तक अपनी तलाश में असफल रहने के बाद भी, किसी को भी एक पल का भी संदेह नहीं है कि कोई जवाब है। एक जवाब। एक सही जवाब।

हो सकता है आप सहमत हों या हो सकता है न भी हों। किंतु यदि आपके मन में कोई शक स्कूल की बीमारी के उपचारार्थ केंद्रीय नुस्खे के बारे में बच रहा हो, तो थोड़े समय के लिये मेरे साथ वापस औपनिवेशिक न्यू इंग्लैंड चलिये जहाँ संस्थानों का अलग सिद्धांत था, ऐसा सिद्धांत जो श्रेष्ठतम् प्रकार के पुनर्विचार/सुधार का मार्ग प्रशस्त कर सकता है, जहाँ गंभीर त्रुटियाँ स्व-सीमित है और इतिहास के शब्दों में प्राकृतिक बाज़ार व्यवस्था उन्हें शीघ्र समाप्त कर देती है। मेरे साथ औपनिवेशिक न्यू इंग्लैंड के सागर तट पर चलिये, सालेम, मार्बल हेड, फ्रेमिंघम और डेडहाम, वेलफ्लीट और प्रोविंसटाउन चलिये। नये विश्व की भूमि पर जो भिन्न प्रकार की अवधारणा उत्पन्न हुई उस पर विचार कीजिए, अवधारणा जिसने अन्य राष्ट्रों को अपनी उत्पादक प्रतिभा से झकझोर दिया।

यह नई व्यवस्था सालेम में प्रथम प्यूरिटन चर्च से आरंभ हुई, जो कि 1629 में तथाकथित ''सालेम प्रोसीजर'' के नाम से संगठित की गई थीं। चर्च अधिकारियों के चयन का अनुमोदन करने हेतु कोई ''बड़ा'' व्यक्ति आस-पास में नहीं था, अत: कांग्रेगेशन (भक्त जनों की सभा) ने जवाबदारी अपने ऊपर ले ली। उस साधारण क्रिया से उन्होंने वह अधिकार हस्तगत कर लिया जो पारंपरिक रूप से किसी प्रमाणित विशेषज्ञ का होता था तथा उन लोगों के हाथों में दे दिया जो चर्च जाते थे। वही शासन का एकमात्र मापदंड था कि मतदाता गंभीरता से चर्च जाता हो और बतौर साक्ष्य कांग्रेगेशन का सदस्य बने। यह विराट स्थानीयता की क्रिया थी। अगले दो सौ वर्षों तक, पारंपरिक सत्ता को सरलता से फेंक देने के कारण राज्य व चर्च के एकाधिकार प्रभावित हुए जो सत्य के एक जैसे संस्करणों का प्रचार करते रहते थे। प्रत्येक पृथक कांग्रेगेशन ने अपने पैरिश (स्वशासित गाँव) को सजग बनाने हेतु जबर्दस्त भूमिका का निर्वाह आम सदस्यों में बहस के द्वारा किया, न कि बाहरी सत्ता की घोषणा द्वारा जिसमें केंद्रीकरण अंतर्निहित होता है। प्रत्येक पृथक धर्मसभा ने अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझाने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया, चाहे वह शिक्षा, अर्थशास्त्र या सिद्धांत से संबंधित हो - बजाय इंग्लैंड की पुरानी सत्ता के समक्ष या विशेषज्ञों के नए अभिजात्य वर्ग के समक्ष झुकने के।

* * *

पिछले शरद काल में डेडहाम में 1638 में निर्मित चर्च में मैंने व्याख्यान दिया, अर्थात् जिसे *आराबेला* द्वारा बोस्टन में नान कान्फर्मिस्टों के लाए जाने के नौ वर्षों बाद बनाया गया था। जिस चर्च में मैंने संबोधित किया वह अद्वैतवादी यूनिवर्सलिस्ट था, किंतु मूलत: वह कांग्रेगेशनल था। श्वेत शिखर, सरल लालित्यपूर्ण रेखाएँ – कांग्रेगेशनल चर्च स्थापत्य की सौम्यता और सरलता पूर्णत: दोषरहित, असाधारण और एकरूप। आपको यह विदित हो या न हो कि पूजा की इस शैली का स्थापत्य के साथ जो तालमेल था वह मेसाच्यूएट्स बे कालोनी का मौलिक एवं अलग था, और वह सालेम प्रोसीजर से 1834 तक यानी दो सौ वर्षों से अधिक काल तक बतौर ''एक-सही-रास्ता'' जारी रहा। या तो आप कांग्रेगेशनलिस्ट (धर्मसभावादी) थे या आप की मजाल नहीं थी कि आप सार्वजनिक रूप से कुछ अन्यथा बोलें, क्योंकि उसमें दूर कर दिये जाने, प्रपीड़ित किये जाने या जीवित जला दिये जाने का खतरा था। अब तक यह उन स्कूलों के एकाधिकार से अधिक भयानक लग रहा होगा, जो हमें बर्बाद कर रहा है। नहीं क्या ?

ये धर्मसभावादी अपने एकाधिकार के प्रति इतने ज्यादा सतर्क थे कि एक सौ पचहत्तर वर्ष पूर्व जब लाइमैन बीचर ने सुना कि अद्वैतवादी नर्क की अंतड़ियों से निकल गए हैं, तो वह सड़क पर घोड़े पर सवार होकर चेतावनी देता हुआ निकल पड़ा कि ''अद्वैतवादी आ रहे हैं।'' आप सोचेंगे कि पार्सन बीचर उनके आने पर उतना उत्तेजित नहीं हुआ होगा। परंतु अगली सदी के दौरान एक आश्चर्य जनक बात हुई। धर्मसभावादियों ने धीरे-धीरे अपना मन बदल लिया – *जबकि किसी ने उन पर दबाव नहीं डाला था।* 1800 के अंत तक अद्वैतवादियों का सारे न्यू इंग्लैंड में आदर होता था।

अनेक लोग सोचते हैं कि औपनिवेशिक न्यू इंग्लैंड कन्फर्मिटी (प्रचलित रीतियों का अनुपालन) का इस देश में सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। परंतु कांग्रेगेशनलिज़्म एक बड़ी विडंबना को छिपाता है : संरचना की दृष्टि से इस प्रकार के जीवन के लिये व्यक्तिपरकता की आवश्यकता होती है, कठोर अनुशासन की नहीं। सेवा में उपासना का कोई बंधन नहीं है, स्थानीय मुद्दों पर स्थानीय उपदेशों का आग्रह होता था। यह एक प्रकार से धर्मसभा के अंदर (मत-मतांतर) विचारों में भिन्नता को स्वीकार्य करने की अनुमति देता है। चर्च के हर एक सदस्य द्वारा स्पष्टता हेतु निरंतर प्रयास जो खुद ही अपना पादरी होता

या होती थी, अपना स्वयं का विशेषज्ञ – ये सब बाते सदैव सत्य की प्रगति की ओर ले जाती है। मैं क्यों ऐसा कहता हूँ ? अभी मैंने जिसका वर्णन किया उसे अरस्तू, कार्ल मार्क्स, थॉमस हाब्स या अनेक सृजनशील विचारकों ने 'डायलेक्टिक' (तर्कयुक्त) कहा है। धर्मसभात्मक प्रक्रिया अपनी जड़ों में तर्कयुक्त थी - एक तरह से पुरोहित तंत्र (पदक्रम व्यवस्था) की घोर विरोधी थी।

किसी भी कालखंड के केंद्रीय योजनाकारों को तर्क से घृणा होती है क्योंकि वह उनके उस प्रचार के पथ में रोड़े खड़े कर देता है जब वे ''एक-सही-रास्ता'' का राग अलापते हैं। आधी शताब्दी पूर्व बट्रेंड रसेल ने टिप्पणी की थी कि दुनिया में संयुक्त राज्य ही एकमात्र देश है जो अपने बच्चों को तार्किक दृष्टि से सोचने की शिक्षा जानबूझकर नहीं देना चाहता। वे बीसवीं सदी के अमेरिका की बात कह रहे थे, अनिवार्य सरकारी शिक्षा की धरती की, न्यू इंग्लैंड के धर्मसभात्मक भिन्नता की नहीं। क्या आपने कभी इस बात पर आश्चर्य किया है कि ''यांकियों'' (अमेरिकन्स) ने अड़ियलपना, चिड़चिड़ापन और मक्कारी से बाल की खाल निकालने की स्थायी कीर्ति कहाँ से प्राप्त की? अब आप जानते हैं। राजर विलियम्स (धार्मिक स्वतंत्रता और राज्य से चर्च के अलगाव का पक्षधर) ने इसे जितना साफ देखा था उतना शायद ही उनके समय के किसी भी अन्य व्यक्ति ने देखा होगा और विचारों में भिन्नता और जीवन की गुणवत्ता के बीच के अवश्यंभावी संबंध की पहचान कर ली थी। एक के बगैर दूसरे की आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

हाल के शोधकार्यों से पता चला है कि मेसाच्यूएट्स के कस्बे सत्रहवीं शताब्दी में एक जैसे नहीं थे अपितु स्थानीय विकल्पों और शैलियों की प्रयोगशाला थे। प्रत्येक में पर्याप्त लचीलापन था ताकि वे किसी केंद्रीय शासन व्यवस्था से हटकर व्यवहार कर सकें। डेडहाम शहर जहाँ मैंने पिछले शरद काल में व्याख्यान दिया था, के लोग इंग्लैंड के ईस्ट एंग्लिया से आकर बस गए थे, जहाँ निजी मालकियत और व्यक्तिगत विकल्पों को महत्त्व दिया जाता था। ईस्ट एंगिलया के संस्थान नई दुनिया में भी शीघ्र स्थापित हो गए। दूसरी ओर डेडहाम के निकट का कस्बा सडबरी है जहाँ सेक्सन और कोल्टिक पृष्ठभूमि के लोग आकर बसे, जो परंपरा के अनुसार हर कार्य में भागीदारी रखते थे। जैसा कि वे ब्रिटेन में करते थे, उन्होंने अमेरिका में भी खुले खेत बनाए। औपनिवेशिक

मेसाच्यूएट्स में इसलिये क्षेत्र की प्रचलित संस्कृति और स्थानीय ग्राम संस्कृति के बीच सृजनात्मक तनाव रहता था। जैसा तनाव संगीत या कविता में होता है, एक नियमित मानदंड तथा उससे हटकर क्रियाशीलता के बीच तनाव है। छोटे शहरों तथा विविध धर्मसभाओं एवं हर धर्मसभा के अंदर भी ऐसे तनावों ने विस्मयकारी ऊर्जा, उर्वर तथा स्वभाव-वैशिष्ट्यता के उदाहरण प्रस्तुत किये जो विशिष्ट प्रतिभा के द्योतक थे तथा जिन्होंने औपनिवेशिक मेसाच्यूएट्स को अलग पहचान दी।

अब मैं चाहूँगा कि हम कुछ ऐसी बातों का परीक्षण करें जो न्यू इंग्लैंड के नागरिक जीवन में शर्मिन्दगी का एहसास दिलाती हैं; और फिर भी विरोधाभास यह है कि वह महान शक्ति के उस रहस्य को छिपाती है, जिसे सामाजिक अभियंताओं ने बनाया और संधारित किया था और जिसकी हमारी सरकार के एकाधिकारवादी स्कूल अनदेखी करते हैं। *प्रत्येक कस्बा उन लोगों को अलग कर सकता था, जो उसे नापसंद थे।* लोग उन लोगों को शामिल करने हेतु स्वतंत्र थे जिनके साथ वे काम करना पसंद करें, वे एक जीवन्त पाठ्यक्रम बना सकते थे जो उन्हें सही लगे। प्रथम डेडहाम चार्टर के ये शब्द इसी भावना को बखूबी प्रतिबिंबित करते थे। मूल प्रवासी चाहते थे (और ऐसा उन्होंने किया भी) कि उन लोगों को छाँट दिया जाए जिनकी प्रवृत्तियाँ हमारे मनोनुकूल न हों; जिनका समाज हमारे लिये हानिकारक हो। अस्तु, बड़े अजीब तरीके से ये आरंभिक नगर चयनात्मक *क्लबों* या कॉलेजों की तरह आचरण करते रहे जैसे कि एमआईटी और हावर्ड आज कर रहे हैं, मानवीय भिन्नताओं को सँकरा करते-करते उस सीमा तक लाएँ जिनका प्रबंध वे मानवीय ढंग से कर सकें। अगर आप इस बात पर विचार करें कि तर्कप्रधान प्रक्रिया से कितना अधिक तनाव पैदा होता होगा – जहाँ सभी लोग अपने पुरोहित, अपने अंतिम मालिक हों। यह देखना कठिन है कि धर्मसभात्मक समाज कुछ अन्यथा कैसे कर सकता है। यदि आपको हर किसी को स्वीकार करना ही होगा, भले ही वे आपके व्यक्तित्व, दर्शन या उद्देश्य के कितने ही विरोधी क्यों न हो, तब घातक असहमतियों के चलते कोई भी कार्य आयोजना पर पक्षाघात होते देर नहीं लगेगी। जो समान कार्य और उद्देश्य अपनी श्रेष्ठता के चरम पर स्थित मानवीय सहयोग की पहचान हैं, वे नीचे गिर कर हानि रहित उपक्रम बन जाएँगे, जिनका कोई राजनैतिक आयाम नहीं होगा।

यह बड़ा दुर्बोध अंतर है: तर्कयुक्तता के अनुसार रहते हुए न्यू इंग्लैंडर्स ने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनसे चरित्र और मन की सुदृढ़ता बतौर व्यक्ति उजागर होती है; किंतु इसका प्रबंधन वहाँ करना संभव नहीं है जहाँ सभी मनुष्यों को एक साथ अव्यवस्थित ढंग से छोड़ दिया जाए या उन्हें साथ रहने पर बाध्य किया जाए, जैसा कि शासकीय एकाधिकार स्कूल जीवन में होता है। इन स्थानों में अराजकता को रोकने हेतु, प्रबंधन का लक्ष्य होता है कि वह येन-केन-प्रकारेण हर चीज को – समय, स्थान, पाठ्य और प्रक्रियाओं को जहाँ तक हो सके एक सा बनाए। यूनान के इतिहास में एक व्यक्ति का उल्लेख है जो ऐसा ही करता था – उसका नाम था प्राकस्टेस, वह अपने अतिथियों को पलंग के आकार के अनुरूप खींच कर लंबा करता या काटकर छोटा करता था। इससे व्यवस्था तो अच्छी चली लेकिन यात्रियों की तबाही हुई।

इन न्यू इंग्लैंड के निवासियों ने एक नई पद्धति की खोज की जिसमें वे लोग जो साथ मिलकर रहना और काम करना चाहते थे, वैसा वे कर सकते थे। इसके बावजूद पूरा क्षेत्र शानदार तरीके से समृद्ध हुआ - भौतिक, बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से। यह ऐसा था मानो अपने काम का ख्याल रखकर आप किसी जादुई तरीके से सार्वजनिक काम का भी ख्याल रखते थे। आत्म-निर्भरता, आत्म-सम्मान, भयहीनता, लोकतंत्र तथा स्थानीय निष्ठा की आदत ने उम्दा नागरिक उत्पन्न किये। आजकल शासकीय एकाधिकार स्कूल भिन्न प्रकार के मानचित्र का प्रयोग करते हैं। लोगों को, उनकी इच्छा हो या न हो, बड़े क्षेत्रों से पकड़कर वहाँ अंकतालिका और मानकीकृत परीक्षा के अनुरूप अलग-अलग कमरों में बंद कर दिया जाता है और उनसे आव्हान किया जाता है कि वे अजनबियों के बताये तरीकों के अनुसार व्यवहार करें। क्रिस्टोफर लैश्च *'द ट्रू एंड ओनली हैवन'* में लिखते हैं:

> वफादरी की क्षमता को खींच कर बहुत क्षीण कर दिया जाता है जब वह खुद को मानव जाति की काल्पनिक सुदृढ़ता के साथ जोड़ने का प्रयत्न करती है। उसे विशिष्ट लोगों और विशिष्ट स्थानों से जुड़ना चाहिये न कि वैश्विक मानवाधिकारों के अमूर्त आदर्श से। हम खास पुरुषों और महिलाओं से प्रेम करते हैं, आम मानवता से नहीं।

इससे हमें अंदाज़ा हो जाता है कि न्यू इंग्लैंड कस्बों जैसे बड़े स्कूल, अनिवार्य स्कूलों में क्या गलत हो रहा है – जो पाठ्यक्रम, दर्शन या साथियों के चयन की अनुमति नहीं देते हैं। वेन्डेल बेरी इसी संबंध में एक पत्रिका के संपादक को अपने पत्र में लिखते हैं :

> मैं नहीं सोचता कि 'वैश्विक सोच' व्यर्थ है, मैं मानता हूँ कि वह असंभव है। आप उस बारे में सोच ही नहीं सकते, जो आप जानते ही नहीं, और कोई भी इस ग्रह को नहीं जानता। कुछ लोग उसके कुछ लघु अंशों के बारे में थोड़ा बहुत जानते हैं ... लोग जो वैश्विक सोच वाले हैं वे ऐसा काल्पनिक और सांख्यिकीय ढंग से दुनिया को संख्याओं और मात्राओं में बांट कर करते हैं। राजनैतिक तानाशाहों और औघोगिक शोषणकर्ताओं ने ऐसा अत्यंत सफलतापूर्वक किया है। उनकी अवधारणाएँ और लालच तथा कल्पनाएँ सीधे और बड़ी सरलता से वार करती हैं, जो सदैव विनाशकारी होती हैं। यदि आप अच्छे और परिरक्षणीय कार्य करना चाहते हैं तो आपकी सोच व क्रिया स्थानीय होनी चाहिये। अच्छा कार्य करने के प्रयास वैश्विक खेल के साथ नहीं चल सकते। आप ऐसा उत्तम कार्य नहीं कर सकते जो वैश्विक हो ... अच्छे कृत्य को अच्छा होने के लिये, स्वीकार्य होना चाहिये जैसा कि एलेक्जेंडर पोप के शब्दों मे, ''स्थान की प्रतिभा।'' इसके लिये स्थानीय ज्ञान, स्थानीय कौशल और स्थानीय प्रेम की आवश्यकता होती है जो हममें से किसी के भी पास नहीं है, और हममें से कोई भी उसे वैश्विक सोच के जरिये नहीं पा सकता। उसे हम केवल स्थानीय ईमानदारी से हासिल कर सकते हैं जिसे हमें अनेक जन्मों तक बचा कर रखना होगा। मैं उन लोगों के प्रेम का आकांक्षी नहीं हूँ जो मुझे नहीं जानते, यदि मैं नक्षत्र होता तब भी मै ठीक ऐसा ही भावना रखता।

स्थानीय कौशल, स्थानीय ज्ञान, स्थानीय प्रेम और स्थानीय निष्ठा धर्मसभावादियों को जोड़ने वाले तत्व थे, जिनका श्रेष्ठतम् उत्पादन न्यू इंग्लैंड ने किया, परंतु इस स्थानीयतावाद का नकारात्मक पहलू भी था।

आरंभिक न्यू इंग्लैंड का धार्मिक भेदभाव पर्याप्त स्थानीय समन्वय को सुनिश्चित करने का उपाय था जो कि समान उद्देश्य वाले, एक दूजे के साथ निभ जाए ऐसे समुदाय के लिये जरूरी था। तीन सौ वर्ष पूर्व जो डेडहाम, मेसाच्यूऐट्स में घटित हुआ उसका यह दृश्य उस चर्च से भी देखा जा सकता था जहाँ मैंने व्याख्यान दिया। तीन समाज सुधारक महिलाओं को कमर तक निर्वस्त्र करके, एक गाड़ी के पीछे बांधकर कोड़े मारते हुए सारे शहर में घुमाया गया। यह कहना अल्प बयानी होगा कि ऐसा व्यवहार करने के पीछे वजह मात्र यह थी कि समाजसुधारकों की प्रवृत्ति डेडहाम के मनमुआफिक नहीं थी। परंतु प्रेसबिटेरियन प्रवृत्ति भी तो उनके मन लायक नहीं थी। जॉन मिल्टन ने स्वयं लिखा था, ''नया प्रेसबिटर, बड़े आकार में पुराना पादरी ही तो है,'' अत: सभी प्रेसबिटेरियन को न्यू जर्सी के पठारों से खदेड़ दिया गया था, जहाँ उन्होंने प्रिंसटन की स्थापना की। डेडहाम में कैथोलिक या लेवलर, डिगर या हट्टेराइट होना भी गुनाह था। इस घृणित तरीके से डेडहाम 234 वर्षों तक अपनी धार्मिक शुद्धता का आनंद लेता रहा और फिर उसका धर्मसभात्मक एकाधिकार खंडित हो गया।

इस सबका क्या मतलब हो सकता है? केवल इतना : स्थानीय पसंद में नकारात्मक पक्ष को चुनना बहुत सरल है और उसकी भविष्यवाणी करना भी सरल है। औपनिवेशिक डेडहाम में हम इसका उदाहरण देखते हैं। परंतु सारा मामला अत्यंत जटिल हो जाता है और केवल उसे खराब ग्रेड, धार्मिक भेदभाव के लिये या अन्य प्रकार के सामाजिक विकल्प हेतु देने से ही काम नहीं बनता, जो किसी विशेष किस्म के मानव संघ का निर्धारण करता तथा उसकी सीमाएँ बाँधता हो। मिसाल के लिये, हम इसका उत्तर जानने के लिये कहाँ से आरंभ करें कि ये लोग कैसे शनै: शनै: अधिक सहनशील होते गए और हर तरह के धर्मों को स्वीकार करने लगे ?

यहाँ तक कि उन्होंने अपने दकियानूसी तरीकों को इस हद तक त्याग दिया कि मेसाच्यूएट्स की ख्याति संघ के सर्वाधिक उदार राज्य के रूप में व्याप्त हो गई। बिना किसी ज़्यादती, धमकी या कानून में कोई बड़ा संशोधन किये बगैर ऐसा बदलाव कैसे आया इसका उत्तर ढूँढना सरल नहीं है। किस प्रकार डेडहाम और अन्य शहरों ने अपने आपको बिना विशेषज्ञों के सुधार का *पाठ पढ़ाया,* बगैर किसी केंद्रीय हस्तक्षेप के ? याद

रखें, उन्होंने सिर्फ एक ही धर्म के मानने वालों को मतदान की अनुमति दी। बावजूद इसके वे बदले! किसी ने उन पर इसके लिये दबाव नहीं डाला! धर्मसभा की संरचना के अंदर ही कुछ ऐसी रहस्यमय बात थी जिसने लोगों को अपनी एकान्तिकता को कुछ हद तक त्यागने के लिये राजी किया जिसे उन्होंने बाइबिल की अभिजात्य हठधर्मिता से सीखा था।

मुझे पूरा विश्वास है कि ''कुछ'' था जो लगभग बिना किसी शर्त के स्थानीय विकल्प था। और वह स्व-सुधारक था! क्योंकि शहरों के चर्च मिलकर किसी संस्थात्मक रूढ़िवादिता को प्रश्रय नहीं देते थे जिससे कि हर एक शहर दूसरे शहर जैसा हो जावे – जैसा कि शासकीय एकाधिकार स्कूल आज कर रहे हैं – एक चर्च की गलती को दूसरा चर्च सुधार लेता था। जब तक लोगों के पास विकल्प था कि वे चाहें तो पैरों से वोट डालें, खुला बाज़ार गंभीर गलतियों के लिये सजा के तौर पर कांग्रेगेशन को खाली छोड़ देता था, ठीक उसी तरह जैसे वह अच्छी जगहों को भरकर पुरस्कृत भी कर सकता था। और पर्याप्त संख्या में सड़े हुए लोग, सड़ा शहर या सड़ी धर्मसभा बना सकते थे, जब तक कि कोई ऐसी मशीनरी न हो जो सभी को बाध्य करें कि किसी एक विचार विशेष के सामने नताशीर हों, अत: इससे जो मानवीय क्षति होती थी वह अत्यंत सीमित थी। सिर्फ जब ऐसी स्थिति निर्मित हो जिसके कारण केंद्रीय रुढ़िवाद उदित हो सकती हो, तब ही पिरामिड की भाँति वास्तविक खतरा होता है, कि कोई केंद्रीय विष हम सभी को ज़हर दे सकता है।

* * *

हाँ, स्थानीय विकल्प के नकारात्मक पहलुओं को पहचानना आसान है और उसके पक्ष में प्रबल तर्क हैं – कि बगैर उसके लोकतंत्र की प्रतिभा कायम नहीं रह सकती – इसे देखना कठिन है। क्योंकि स्थानीय अत्याचार भी कम नहीं हैं, लोभ है कि केंद्रीय सत्ता को उचित के नाम पर सत्ता सौंप दी जाए, ताकि वह श्रेष्ठतम् रीति से केंद्रीय मुख्यालय से सबके लिये प्रबंध करे। स्कूलों के लिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ऐसा होना ही चाहिये की सोच, एक विवेकपूर्ण, समझदारी भरा तरीका कि खराब स्कूलिंग को समाप्त करने हेतु

एक विधेयक पारित किया जाए। एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कभी भी डेडहाम, सडबरी या प्रेमिंघम या वेलफ्लीट को उस प्रकार विकसित नहीं होने देता जैसे वे हुए; वह खतरनाक, अप्रत्याशित और बांटने वाला काम होता – नहीं, उन्हें केंद्र द्वारा नियमित किया जाता, जैसा कि आज हमारे स्कूलों को किया जा रहा है, लेकिन बिना राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के, बिना राष्ट्रीय मानकों के।

यहाँ तर्कबुद्धि का प्रवेश होता है। हमारी केंद्रीय नियोजित शताब्दी का अनुभव अधिकांश लोगों के लिए बहुत अच्छा नहीं रहा। कुछ लोगों के अनुसार यह ग्रह ही खतरे में है। और जिन बातों के लिये कानून बनाए गए जैसे शराब और नशीले पदार्थों का सेवन, नस्लभेद, वे दूर हो गए हों ऐसा नहीं लगता जैसा कि धार्मिक अलगावपन स्वाभाविक रूप से न्यू इंग्लैंड में स्थानीय विकल्प के शासनान्तर्गत दूर हो गया; बजाय इसके कानून जीवन को, बुरी आदतों का विषैला इंजेक्शन लगाता प्रतीत हो रहा है। उन महान प्रगतिवादी जीतों पर विचार कीजिये जो न्यायालयों में इस वजह से जीती गई क्योंकि सामाजिक इंजीनियर लोकप्रिय सर्वानुमति बनाने में असफल रहे, या जो प्रतीक्षा करने के लिये तैयार नहीं थे: स्वीकृति क्रिया, जुड़ाव (डेसएग्रीगेशन), चित्रमय कामुक साहित्य जो स्थानीय बस अड्डे पर उपलब्ध है पर प्रतिबंध, विभिन्न महिलाओं के अधिकारों से संबंधित मुद्दे, इत्यादि। क्या ये जीतें उन समूहों के लिये थीं, जिनकी अदालते बचाव करना चाहती थीं, या इन विजयों का वही मूल्य है, जो उनके लिये तब होता, जब वे सामाजिक सर्वानुमति से जीत हासिल करते ? अधिकतर मापदंडों से काले अमेरिकीयों की स्थिति, उदाहरणार्थ 1960 में जैसी थी उससे भी अधिक खराब हो गई है। इसके अतिरिक्त एक नीचतापूर्ण भावना हर ओर दिखाई देती है, हमारे स्कूलों में भी, जो दास प्रथा के वंशजों पर घृणा तथा अवहेलना उड़ेलने का कार्य कर रहे हैं। स्त्रियों की दु:खद स्थिति कुछ उलझी हुई है किंतु अगर तीव्र गति से बढ़ती आत्महत्या की दर, हृदय रोग, भावनात्मक बीमारियाँ, बांझपन व अन्य रोगजनित स्थितियाँ कोई संकेतक हैं, तो महिलाओं की यूनिसेक्स कार्यस्थल में भारी संख्या में भर्ती अमिश्रित कृपादान नहीं है। इसके अलावा परेशान करने वाला सबूत है कि 1990 में कार्यरत *दंपतियों* की आय की क्रय शक्ति 1910 में औसत कार्यरत पुरुष आय की क्रयशक्ति से सिर्फ थोड़ी सी ज्यादा

है, नतीजतन दो श्रमिक अब एक की कीमत पर खरीदे जा रहे हैं। और इस सब की अदृश्य कुल लागत है पारिवारिक जीवन का सत्यानाश, बतौर सुरक्षित स्थान या स्वर्ग के रूप में घर का नाश और बच्चों की व्याकुलता, जिनका पैदाइश से ही अजनबियों ने पालन-पोषण किया है।

क्या केंद्रीय क़ानून के डर से वे सामाजिक परिणाम मिलते हैं जिनका वह आश्वासन देता है ? बहुत पहले की बात नहीं है जब नशीली वस्तुएँ संयुक्त राज्य में वैध थीं, जबकि वे हमेशा ही घातक व हानिकारक थीं। उनके उपयोग को प्रतिबंधित करने वाले कानून के अस्तित्व में आने के पहले वह महामारी नहीं थीं। क्या यह संभव है कि लोगों को किसी काम के लिये *मजबूर* करने पर यह पक्का हो जाता है वे उस काम को खराब तरीके से ही करेंगे, बुरे इरादे से या उदासीन भाव से, बर्शते कि आप चाहें, जैसे कि सेना करती हैं, अधिसंख्य मानव अधिकारों का हनन करना और किसी भी हद तक डराना क्या ज़रूरी है? और यदि दूसरा रास्ता ही सही है कि अनिवार्य करने से शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं, तो फिर *मानव* मूल्य ही क्या है यदि वह मानव जीवन की गुणवत्ता को घटाता है?

शिक्षा के मामलों में विकल्पों के चयन पर अनेकों प्रतिबंध कानून द्वारा लागू किये गए हैं, जिन्होंने बेलगाम अफसरशाही को अनेक अधिकारों से वेष्ठित कर दिया है, जिसमें प्रमाणित शिक्षक व प्रशासक और हज़ारों अदृश्य एजेंसियाँ शामिल हैं जो शासकीय एकाधिकार के संस्थान को संधारित (मेंटेन) करती हैं। बाज़ार के सबकों को न मानते हुए यह मनोविकारी महापाषाण अधिकाधिक शक्तिशाली होता गया, बावजूद इसके कि अपने संपूर्ण कालखंड में वह शिक्षित करने में बुरी तरह से नाकामयाब रहा है। वह बचे रहने में सिर्फ इसलिये सफल रहता है क्योंकि उसके पीछे राज्य की पुलिस की ताकत खाली कक्षाओं को भरने हेतु है। वह स्थानीय पसंद और वैविध्य को वर्जित करता है और इस प्रतिबंध के कारण, उसका हमारे राष्ट्रीय नैतिक ताने-बाने पर जघन्य प्रभाव है। शराब पर कानून द्वारा राष्ट्रीय प्रतिबंध लगाए जाने के कारण सामाजिक संसक्ति एवं सामान्य मूल्यों पर जो असर पड़ा है उसका सबक इतना नया है कि उसे भूला नहीं जा सकता। और अनिवार्य शासकीय एकाधिकार शिक्षा जो प्रतिबंध बच्चों और परिवारों पर

लगाती है, उसकी तुलना में शराब पर प्रतिबंध छोटी बात है। शिक्षा में मुक्त व्यापार को रोकने से, मुट्ठी भर सामाजिक इंजीनियर, जिनके पीछे उद्योगों का वरदहस्त है और जो अनिवार्य स्कूलिंग से लाभान्वित होते हैं – महाविद्यालय, पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशक, सामग्री प्रदायक व अन्य ने – सुनिश्चित कर रखा है कि हमारे अधिकांश शिशुओं को शिक्षा नहीं मिलेगी, भले ही उनकी जमकर स्कूलिंग की गई हो।

धर्म से अलग, धर्मसभात्मक सिद्धांत मनोवैज्ञानिक बल हैं जो व्यक्तियों को उनकी अधिकतम क्षमता तक पहुँचने में सहायक होता है, जब वे छोटे समूहों में उन लोगों के साथ मिलकर कार्य करते हैं जिनसे उनका सामंजस्य हो। यदि आप इस पर विचार करें तो आप अचरज में पड़ जाएँगे कि किस उद्देश्य की पूर्ति चीज़ों को किसी अन्य उपाय के करने से होती है। धर्मसभावादी अच्छी तरह से जानते थे कि अच्छी बातें तब होती हैं जब मानव के साहस को *अकेला छोड़ दिया जाए।*

श्रेष्ठतम् तात्कालिक सबूत जो मैं प्रस्तुत करना चाहूँगा वह है लोगों को अपने स्थानीय भाग्य को तय करने हेतु छोड़ देना, यह एक उत्तम विचार है, इसके पीछे मेरे जिज्ञासापूर्ण समाजशास्त्र का अनुभव है, जब मैं पिछले वर्ष डेडहाम में संबोधित करने के लिये गया था। वहाँ, उस समुदाय में, जिसने अर्धनग्न समाज सुधारक महिलाओं पर चाबुक बरसाए थे, मैं खड़ा था – एक रोमन कैथोलिक, अपनी स्काट प्रेसबिटेरियन पत्नी के साथ, और मेरे साथ थे मेरे मित्र रोलैंड जो आधे विधर्मी, आधे यहूदी – यूनिटेरियन यूनिवर्सेलिस्ट चर्च में जो कभी कांग्रेगेशनल था। मेसाच्यूएट्स विधायिका के किसी अधिनियम ने इसे मुमकिन नहीं बनाया, सर्वोच्च न्यायालय के किसी आदेश ने भी नहीं। डेडहाम में लोगों ने पड़ोसियों की तरह रहना सीखा क्योंकि तीन सौ वर्षों से उनके पास वास्तविक विकल्प था, अपनी गलतियाँ खुद करने का भी। हर किसी ने मत में भिन्नता से निपटने का बेहतर उपाय सीखा बजाय पृथकता के क्योंकि उनके पास विचार करने के लिये समय था और उसे दुरुस्त करने का भी – समय जिसका मापन पीढ़ियों से किया गया।

किंतु यदि उन्हें बदलने हेतु *आदेश* दिया जाता, जैसा अन्य प्रवासियों के साथ हुआ, जिन्हें हुक्म दिया गया कि अपना व्यवहार बदलो और अपनी संस्कृति को

अनिवार्य स्कूलों में तिलांजलि दे दो जो इसी मकसद से स्थापित किये गये थे, तो मेरे अनुमान से क्या हुआ होता वह यह है: कि उनमें से कुछ ऐसा *ढोंग* करते मानो वे बदल गए हों, किंतु उनमें अपने विकल्पों से वंचित किये जाने पर किसी प्रकार बदला लेने की आग धधकती रहती। और अधिकांश समूह जिन्हें अपने विकल्पों, संस्कृति, परिवार और जड़ों से वंचित किया जाता वे इन सामाजिक दबावों के कारण विविध तरीकों से अनुक्रिया करते, धीरे-धीरे पागल हो जाते या मूर्खों में तब्दील हो जाते जो केवल किसी अन्य के पिरामिड बनाने हेतु पत्थर उठाने योग्य ही रह जाते, या फिर टेलीविजन पर मूर्खतापूर्ण कल्पनाओं को निहारते बैठे रहते, किंतु अन्य किसी काम के नहीं रह जाते।

धर्मसभा के दिनों से लेकर आज तक हम जो स्थानीय विकल्प की बातें दिखावे के लिये करते रहे हैं, उसके बावजूद हमारे स्कूल केंद्र द्वारा नियोजित हैं, उनका राष्ट्रीय पाठ्यक्रम है जिसकी मध्यस्थता पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन उद्योग एवं शिक्षकों के मानकीकृत प्रशिक्षण द्वारा की जाती है। इस प्रकार हमारे स्कूल हमारे बच्चों को उस तरह की शिक्षा देने में बुरी तरह असफल रहे हैं जैसी कि हम उनके लिए चाहते हैं, या जिससे लोकतांत्रिक, वर्गहीन समाज की स्थापना का सपना साकार हो सके ; हम अभी भी उसके लिये लालायित हैं, जो हम नहीं समझ पा रहे हैं वह है अपनी असफलता का तर्क। केन्द्र को आदेश देने हेतु अधिकृत करके जो अब हमारे नियंत्रण के बहुत बाहर है, हम बार-बार धर्मसभात्मक सिद्धांत के पाठ को चूक गए हैं: *''कि लोग संपूर्ण से कम होते हैं जब तक कि वे स्वेच्छा* से समूहों में एकत्रित न हो जाएँ, जिनमें आपसी समन्वय हो।'' वैयक्तिक, पारिवारिक और सामुदायिक सपनों की पूर्ति हेतु आपस में एकत्रित होना, जो उनकी निजी मानवीयता के अनुकूल है, उन्हें संपूर्ण बनाता है, केवल गुलाम दूसरों के लिये इकट्ठे होते हैं। और इन सपनों को स्थानीय रूप से लिखा जाना चाहिये, क्योंकि किसी बड़ी महत्त्वाकांक्षा की प्राप्ति बिना ऐसे पुष्ट आधार के नहीं हो सकती, बल्कि इसके अभाव में उन चीज़ों से संपर्क टूट जाएगा जो जीवन को अर्थ प्रदान करती हैं: खुद से, परिवार से, मित्रों से, कार्य से तथा अतरंग समुदाय से।

* * *

मुझे ऐसा लगता है कि आजकल यूनाइटेड स्टेट्स में शिक्षा की स्थिति की ओर देखने के दो 'सरकारी' तरीके हैं, दोनों ही गलत हैं। पहले में, हम उसे इंजीनियरिंग समस्या मान कर चलते हैं, जिसे व्यावहारिक यांत्रिकीय अभिगम (एप्रोच) द्वारा सुलझाया जा सकता है। इस अनुकूल बिंदू से स्कूलिंग का एक सीधा-सरल, सही और गलत रास्ता है न कि हज़ारों निजी वैयक्तिक संभावनाएँ जिन पर न्यू इंग्लैंड के धर्मसभावादी कदाचित विश्वास करते। दूसरे में हम स्कूल व्यवस्था की ओर इस दृष्टि से देखते हैं जैसे कि वह अदालत में निरंतर चल रहे नाटक का पात्र हो, नाटक जिसमें हम उन खलनायकों को ढूँढते हैं जिन्होंने हमारे बच्चों को सीखने से रोका है। खराब शिक्षक, स्तरहीन पाठ्यपुस्तकें, अक्षम प्रशासक, कुटिल राजनीतिज्ञ, कुप्रशिक्षित अभिभावक, खराब बच्चे – जो भी खलनायक हो, उसे हम ढूँढ लेंगे, उस पर अभियोग चलायेंगे, आरोप तय करेंगे, सज़ा देंगे और शायद उसे मृत्युदंड भी दे देंगे! तब सब कुछ ठीक हो जाएगा।

इन दो मुँहे गलत तरीकों से शिक्षा की ओर देखने के फलस्वरूप विराट उद्योगों का उदय हुआ है जो थोक शिक्षा का इसके घर्षणों व इसके दैत्यों से उपचार करने हेतु अधिकारों की माँग करते हैं और बदले में धन की माँग करते हैं। इस जादुई सोच के आनंदोत्सव में लाभार्थियों की परेड हो रही है: विश्लेषक, परामर्शदाता, शोधकर्ता, विद्वानों की समितियाँ, लेखक, सलाहकार, स्तंभकार, पाठ्यपुस्तक समितियाँ, स्कूल मंडल, परीक्षण निगम, पत्रकार, शिक्षा महाविद्यालय, मॉनीटर, समन्वयक, निर्माता, प्रमाणित अध्यापक तथा प्रशासक, टेलीविज़न कार्यक्रम तथा अनेकानेक स्कूल से संबंधित व्यापार – सब-के-सब स्कूल अवधारणा पर शासकीय एकाधिकार से बढ़ते परजीवी।

हममें से कइयों के लिये सामाजिक इंजीनियरिंग तथा असामाजिक पैशाचिकता का आकर्षण यह है कि दोनों ही अपनी-अपनी तरह से त्वरित मरम्मत का दावा करते हैं। अमेरिकी सपने का यह सदा से ही एक श्याम पक्ष रहा है, आसान रास्ते की खोज, जादू में विश्वास। अंतहीन वादों की परेड जो कि अमेरिकी विज्ञापनों की आत्मा है, हमारे बड़े राष्ट्रीय उद्यमों में से एक, और यह साबित करता है कि हमारी राष्ट्रीय आधार शिक्षा के अंदर अंधविश्वास कितना गहरा समाया हुआ है, जिसका संस्थानीकरण विज्ञापन और व्यापार ने किया है। फटाफट पैसा, फटाफट स्वास्थ्य, फटाफट सौंदर्य, फटाफट शिक्षा

– बर्शते कि कोई सही टोटका मिल जाए। जादू के पीछे से झाँकती हुई मशीनरी के रूप में लोगों की छवि है, जिसे बनाया और सुधारा जा सकता है। यह हमारी केल्विनिस्ट वसीयत है जो सदियों से हमें पुकार कर कह रही है कि संसार और उसका समस्त जीवधारी वैविध्य मात्र मशीनरी है, जिसे ठीक करना बहुत कठिन नहीं है, बशर्ते कि हम संवेदना को अलग कर दें, खलनायकों को निकाल बाहर करें, या तो प्रतीकात्मक ढंग से या वास्तविक आग में झोंक कर, जो शताब्दी के अनुरूप होता है। हममें से ज़्यादातर के लिये स्कूल सुधार एक यांत्रिक है जो सही पाना ढूँढ रहा है या पैरी मैसन है जो दुष्ट को अपराधी सिद्ध करने के लिये किसी सूत्र की तलाश में है।

* * *

अंत में, हम सामाजिक समस्याओं के विषय में कैसा सोचते हैं, यह हमारे मानव स्वभाव के दर्शन पर निर्भर करता है: हम लोगों के बारे में क्या सोचते हैं, वे क्या कर सकने के योग्य हैं, मनुष्य के अस्तित्व का क्या उद्देश्य हो सकता है, यदि कोई हो। अगर लोग मशीन हैं, तो स्कूलों को एक उपाय माना जा सकता है, जो मशीनों को अधिक विश्वसनीय बनाए, मशीनों का तर्क यह होता है कि उसके पुर्जे एक से हों और एक-दूसरे में लगाए जा सकने योग्य हों, सभी क्रियाएँ समय-नियामक, भविष्यवाणी करने योग्य, और किफायती हों। क्या यह आपको उन स्कूलों जैसा नहीं लगता है जहाँ आपने पढ़ाई की हो, या जिन स्कूलों में आपके बच्चे जाते हैं ? दुर्भाग्य से गृहयुद्ध ने कठोर अनुशासन की वित्तीय एवं सामाजिक उपयोगिता को बिना किसी शक की गुंजाइश के सिद्ध कर दिया। किंतु यह विचार कि मनुष्य मशीन जैसे हैं सहस्त्रों वर्षों से प्रचलित है पर उसका प्रभावी शासन प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद चलन में आया।

अमेरिकी शिक्षा अपनी इस पद्धति के अनुसार पढ़ाती है कि लोग मशीन होते हैं। घंटियाँ बजती है, सर्किट खुलते हैं, बंद होते हैं, ऊर्जा प्रवाहित होती या रोकी जाती है, गुणों को संख्या प्रणाली में बदल दिया जाता है, योजना का अनुपालन किया जाता है जिसके बारे में मशीन के पुर्जे कुछ नहीं जानते। मैक्सिको के ओक्टेवियो पाज़ जिन्हें 1990 का साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला था, का हमारे स्कूलों के बारे में कहना है :

> उत्तरी अमेरिका की स्कूल पद्धति में पुरुष व महिलाओं को बाल्यावस्था से ही कठोर प्रक्रिया के अधीन रखा जाता है। संक्षिप्त सूत्रों में गुथे हुए कतिपय सिद्धांतों को प्रेस, रेडियो, टेलीविज़न, चर्चों और विशेषत: स्कूलों में अनवरत दोहराया जाता है। इन योजनाओं में कैद व्यक्ति उस पौधे के गमले के फूलों के समान है जो उसके लिये बहुत छोटा है। वह न बढ़ सकता है न परिपक्व हो सकता है। इस तरह का षड़्यत्र बजाय मदद करने के केवल हिंसक व्यक्तिगत विद्रोह को ही उकसावा दे सकता है।

हम बढ़ नहीं सकते, परिपक्व नहीं हो सकते, जैसे बहुत ही छोटे गमले के पौधे। हम निर्भरता के आदी हो चुके हैं; वर्तमान परिपक्वता के संकट में हम शिक्षक की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं जो बताएगा कि हमें क्या करना है, परंतु शिक्षक बतलाने के लिये कभी नहीं आता। पुल टूटते हैं, स्त्री-पुरुष सड़कों पर सोते हैं, बेंकर्स धोखा करते हैं, माल सड़ जाता है, परिवार एक-दूसरे को धोखा देते हैं, नीतियों के रूप में सरकार झूठ बोलती है – भ्रष्टाचार, शर्म, रोग और सनसनीखेज बातों का चारों ओर बोलबाला है। किसी भी स्कूल के पास तुरंत निदान का कोई भी पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं है।

पुराने धर्मसभावादी उन कारणों की तत्काल पहचान कर लेने में सक्षम थे, पिरामिडीय समाज, जैसी आज की हमारी एकाधिकार प्रारूप वाली स्कूल व्यवस्था है, जिसका अंत उदासीनता और विखंडन में ही होना है। अपनी जड़ से ही वे उस झूठ पर टिके हैं कि मानवीय मामलों में सिर्फ ''एक-सही-रास्ता'' है, और शिक्षा जैसे उद्यम में स्थायी निर्देशों को विशेषज्ञों के हाथ में दिया जा सकता है। यह झूठ है क्योंकि समय, स्थिति और स्थान की हरदम परिवर्तित होने वाली गतिशीलता विशेषज्ञता को उसकी चंपी-मालिश किये जाने के शीघ्र ही बाद अप्रासंगिक और निरर्थक बना देती है।

एकाधिकार स्कूलिंग मधुमक्खियों जैसे समाज का मुख्य प्रशिक्षण संस्थान रहा है। वह स्थायी विशेषज्ञों को प्रमाणित करता है और उनका यह विशेषाधिकार लगातार रहता है और इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि वे कैसा परिणाम दे रहे हैं। ये विशेषाधिकार क्योंकि एक मर्तबा दिये जाने के बाद, स्वेच्छा से नहीं छोड़े जाएंगे, अत: विशेषाधिकारों का पूरा

ढाँचा ही इस प्रकार बनाया गया है कि वह परिवर्तनों के लिये अभेद्य है। कठोरतम आलोचना के बाद भी वे पनप रहे हैं तथा अधिक खतरनाक होते जा रहे हैं, क्योंकि वे राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंगों का पोषण करते हैं। अत्यंत सामान्य शब्दों में इनका सुधार असंभव है क्योंकि वे मनुष्य नहीं रह गए; वे बेमिसाल कार्यकुशलता, स्थायी मानवीय नियंत्रण बचाव मैकेनिज्म से मुक्त व अमूर्त संरचनाओं में तब्दील हो गए हैं। यह ऐसा दैत्य नहीं है जिससे आप कुश्ती लड़ सकें बल्कि इसे तो भक्षण हेतु शिकारों का प्रदाय बंद करके भूखा मारना होगा।

एकाधिकार स्कूल प्रणाली हमारी राष्ट्रीय व व्यक्तिगत पहचान की हानि का प्रमुख कारक है। सामाजिक वर्गों का विभाजन संस्थानीकृत करके और जाति के दलाल की तरह कार्य करके, यह हमारी स्थापना के मिथक तथा स्थापना काल की वास्तविकता के लिये प्रतिकूल है। इसकी शक्ति अनेक स्रोतों से उदित होती है, इतिहास का शिशु विरोधी तथा परिवार विरोधी प्रवाह उनमें से एक है – किंतु सर्वाधिक शक्ति वह उस वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था से प्राप्त करता है जिसका वह स्वाभाविक अनुलग्नक है तथा जिसे स्थायी रूप से असंतुष्ट उपभोक्ताओं की जरूरत रहती है।

* * *

अब यह सब बंद होना चाहिये। यह पद्धति किसी काम की नहीं है और इसी के कारण हमारा संसार विखंडित हो रहा है। कितना भी ठोक-पीट करें हमारी स्कूल-रूपी मशीन शिक्षित लोगों का उत्पादन नहीं कर सकेगी; *शिक्षा और शिक्षा प्रणाली (स्कूल), जैसा की हमने अनुभव किया है परस्पर विपरीत शब्द हैं।* 1930 में, साठ वर्ष पूर्व टामस ब्रिग्स ने हार्वर्ड में व्याख्यान देते हुए कहा था, ''माध्यमिक स्कूलों पर राष्ट्र का निवेश कोई अच्छी उपलब्धि नहीं दर्शाता है''; दो दशक बाद, 1951 में, लॉस एंजेल्स के स्कूलों में 30,000 बच्चों के सर्वेक्षण में पाया गया कि आठवीं ग्रेड के पचहत्तर फीसद बच्चे नक्शे में एटलांटिक महासागर नहीं बतला सके और उनमें से अधिकांश छत्तीस के पचास प्रतिशत की गणना नहीं कर सके। मैं अपने अनुभव से गवाही दे सकता हूँ कि आज भी स्थिति निश्चित रूप से उतनी ही खराब है।

यह सब क्या हो रहा है? किसी भी प्रकार की बहस में हर तरह के शासकीय एकाधिकार स्कूल की एक सी असफलता का मुद्दा उठेगा। टेलीविज़न के जुड़ जाने से स्कूलिंग की विनाशक शक्ति अब भयावह तथा नियंत्रण से बाहर हो गई है। टेलीविज़न संस्थान जो कि थोक स्कूलिंग की संरचना जैसा ही है, ने इतनी सफलता से वृद्धि की है कि पहले के बाहर जाने के सभी रास्ते बंद हो गए हैं। हमने राष्ट्र के बच्चों के मन और चरित्र को, उनकी युवावस्था को कुंद करके, उनके विकल्पों को हटाकर नष्ट कर दिया है। इस अपराध के लिये आने वाली सदी में हम खोई हुई मानवता के रूप में भारी कीमत चुकाएँगे, यदि कोई रास्ता पिरामिड को उलटाने का मिल भी गया तो भी। उत्तर की शुरुआत, एकाधिकार से मुक्ति से होती है।

करने के लिये अब क्या है? डेडहाम, सडबरी, मार्बलहेड और प्राविंसटाउन की ओर देखिये, सब एक-दूसरे से भिन्न, फिर भी अपने समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम। अपनी पीठ राष्ट्रीय समाधानों की ओर कीजिए और मुँह परिवारों, समुदायों की ओर जो सफल प्रयोगशालाएं हैं। अब हम अंदर की ओर देखें जब तक कि हम किसी भी दर्शन के निर्देश की ओर देखें जिसे नाम दे सकें : ''स्वयं को पहचानो''। समझें कि सफल समुदाय इस कहावत को चरितार्थ करते हैं ''अच्छी बाड़ अच्छे पड़ोसी बनाती है'', और साथ ही साथ, वे एक-दूसरे को मान्यता देते, सम्मान देते, समझते और सराहते एवं एक दूजे की भिन्नताओं से सबक भी लेते हैं।

जवाब के लिये धर्मसभात्मक सिद्धांत की ओर देखिये। प्रयोगों को प्रोत्साहित करें, उनकी जिम्मेदारी ले, बच्चे और परिवारों पर भरोसा करें और उन्हें जानने दें कि उनके लिये क्या सर्वश्रेष्ठ है; बच्चों एवं वृद्धों को दीवारों से घिरे अहातों में अलग न करें: बच्चों की शिक्षा में हर किसी को और प्रत्येक समुदाय को शामिल करें: व्यापारों, संस्थानों, वृद्धों, संपूर्ण परिवारों; स्थानीय समाधान ढूँढें और हमेशा निगम (कार्पोरेट) के बजाय वैयक्तिक समाधान को स्वीकार करें। आपको शैक्षणिक परिणामों की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है: पढ़ना, लिखना और गणित पढ़ना कोई मुश्किल काम नहीं है, यदि आप थोड़ा सा कष्ट उठाकर देखें कि अनिवार्यता और स्कूल कार्यक्रम हर व्यक्ति की अपने आप इन विद्याओं को सीखने की इच्छा को सुरखाब के पंख नहीं लगा

देते। इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि सौ घंटों से भी कम की अवधि व्यक्ति को पूरी तरह से साक्षर और स्व-शिक्षक बनाने के लिये काफी है। डराने वाली चालों से बदहवास होकर अपने शिशुओं को विशेषज्ञों की शरण में न डालें।

मैं समझता हूँ कि शिक्षण के प्रमाणीकरण को यथाशीघ्र रद्द कर देना चाहिये। मेरे जैसे प्रमाणित शिक्षा विशेषज्ञों को सीखने हेतु आवश्यक समझा जाता है, यह एक धोखा और घपला है। अपने आस-पास देखिये: शिक्षक, कॉलेज लायसेंसिंग के परिणाम आप स्कूलों में देख रहे हैं। जो कोई भी पढ़ाना चाहे उसे पढ़ाने दें; परिवारों को उनके द्वारा भुगतान की गई करों की राशि लौटा दी जाए ताकि वे खुद छाँटे और चुनें – कि कौन बेहतर खरीदार हो सकता है, यदि तुलना करने के साधन उपलब्ध हों। धर्मसभात्मक प्रणाली को पुन: लागू करें, चालबाजी रहित मुक्त बाज़ार प्रादर्श के अनुसार प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करें – इस विधि से सामाजिक तर्कबुद्धि को पुनर्जीवित किया जा सकेगा। परिवारों, पड़ोस और व्यक्तियों पर भरोसा करें ताकि इस अहम् सवाल का कोई अर्थ निकले कि, ''शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन क्या है।'' यदि उनमें से कुछ लोग आपके मुताबिक जो उचित है, उससे अलग उत्तर देते हैं, तो वस्तुत: वह आपका दायित्व नहीं है, न वह आपकी समस्या है। हमारे किस्म की स्कूलिंग ने इस तथ्य को जानबूझ कर छिपाया है कि ऐसा प्रश्न उठाया जाए और लोकतंत्र के उपहास से आगे जाकर किसी बात को स्वीकार न किया जाए, केवल उसका संरक्षण किया जाए। कोई विशेषज्ञ इस प्रश्न का उत्तर आपकी ओर से दे यह ठीक नहीं है। यह अपनी क्षमता पर हमारा विश्वास था जिसके चलते हम पक्की नींव औपनिवेशिक काल में रख सके। मुझे पूरा विश्वास है कि जो इमारत हमने तब खड़ी की थी, में अभी भी जबर्दस्त क्षमता है। आइये, उसका पुन: उपयोग करें, और सही मायने में महान स्कूल दु:स्वप्न का वास्तविक अमेरिकी निराकरण तैयार करें।

बाद में

दशम वर्षगाँठ संस्करण

शुभकामनाएँ। यहाँ बैठा जब मैं कुछ कहने के लिये विचार करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, जो *''डम्बिंग अस डाउन''* के प्रभाव को आलोकित करे जो मुझ पर, मेरे जीवन पर तथा अन्यों के जीवन पर लगातार पड़ रहा है। फैक्स, पत्रों, ई-मेल, टिप्पणियों और पांडुलिपियों से मेरा छः कमरों का मैनहटन वाला अपार्टमेंट और अप-स्टेट न्यू यॉर्क का मेरा 128 एकड़ का फार्म पट गया है। इनमें से प्रत्येक में उस संस्थानात्मक शोरबे का कोई न कोई पहलू है, जिसे मैंने इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ हिलाना आरंभ किया था।

लिखने वाले मुझे ऐसे शब्दों से सम्मानित करते हैं जिनकी मुझे पात्रता नहीं है: ''इस महामारी का पर्दाफाश करने के काम के लिये, आपकी प्रतिबद्धता के लिये धन्यवाद। मेरे नेत्र सजल हो गए, प्रसन्नता व क्रोध का विचित्र मिश्रण।'' एक पूर्व शिक्षक ने लिखा, ''इस पुस्तक ने अनेक खुले सिरों को आपस में बांध दिया जिन्हें मैं अंतःप्रज्ञा से महसूस करता था किंतु लिख न सका। मैंने बारह प्रतियाँ खरीदी, जिन्हें अपने सह-कर्मियों तथा कई मित्रों के साथ बाँटा। आपकी इस पुस्तक के कारण, इनमें से एक परिवार ने घरेलू स्कूल का फैसला कर लिया, जबकि अन्य कई ऐसा करने पर विचार कर रहे हैं।'' गत वर्ष के दौरान लगभग एक हज़ार इस प्रकार के पत्र, दुनिया भर

से प्राप्त हुए, जिनमें कहा गया है कि एकाएक *''डम्बिंग अस डाउन''* हाथ में पड़ जाने के कारण उन्होंने घरेलू स्कूल का निर्णय लिया। कुआजिमाल्पा, मैक्सिको से यह चिट्ठी आई, ''मैंने अपनी पत्नी और बच्चों के घरू-स्कूल के विचार को खारिज कर दिया था, जब तक कि आपकी पुस्तक नहीं पढ़ी थी। क्या जबरदस्त प्रभाव उसने मेरे जीवन पर डाला! अब मैं अपनी पुत्रियों के चौतरफा विकास को देख कर प्रसन्न हूँ जो वे हमारे घर के प्रेमपूर्ण वातावरण में कर रही है।''

तो क्या यह कृत्रिम विनम्रता है जो मैं कहूँ कि मैं इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ ? नहीं क्योंकि केवल मैं ही जानता हूँ कि मुझे सतर्कतापूर्वक पुस्तक को लिखने में कम काम करना पड़ा है। ईमानदारी से कहूँ तो इसे इस भावना से लेना चाहिये कि किताब ने मुझे माध्यम (स्क्राइब) व गुनाह कबूल करवाने वाला पादरी (कन्फेसर) बनाकर अपने को खुद ही लिख लिया।

एक दशक के दौरान जब से *''डम्बिंग उस डाउन''* ने दिन का प्रकाश पहली बार देखा, इसके पंद्रह हज़ार पाठकों ने कष्ट उठाकर लिखा कि पुस्तक पर उनकी निजी प्रतिक्रियाओं के विषय में मुझे जानकारी हो और वे मेरी अंतर्दृष्टि को बलात् स्कूलिंग के निराशाजनक यथार्थ के उनके अपने अनुभवों से बढ़ा सकते हैं। चकाचौंध करने वाले, विनम्र बनाने वाले, उत्साहित करने वाले विरोधों की बाढ़ सी आ गई – क्रोध का विस्फोट जो वर्षों की कैद, सीमितता और निरादर, वर्षों की धमकियाँ, ऐसे ईमानों के पीछे भागना जो जीतने योग्य नहीं थे, खोए हुए अवसर, तबाह हो चुके संबंध, प्राय: अपने ही अभिभावकों, परिवार, पड़ोसियों, मित्रों और स्वयं से, जो कभी-कभी इतनी शिद्दत से आते कि मैं दु:ख में डूब जाता था।

मैं इन संदेशों में से कुछ के ही उत्तर दे पाया, किंतु उनकी संचित उपस्थिति और साल-दर-साल उनका आते जाना मुझे इस बात की अनुभूति कराता है कि संस्थात्मक शिक्षा प्रणाली द्वारा किये जा रहे नुकसान का घेरा कितना फैला हुआ है – और उसके शिकार हुए लोगों ने जो कुछ खोया है उसकी कितनी अप्रिय स्मृतियाँ उनके पास हैं, और उनमें से सबसे बड़ी क्षति आत्म-ज्ञान की है, और उसके साथ कदाचित् पूरी तरह से प्रेम करने की क्षमता की। *''डम्बिंग अस डाउन''* वह उत्प्रेरक है जो दफन यादों को

ऊपरी सतह तक ले आती है: वह हजारों स्त्री-पुरुषों को उन क्षणों की याद दिलाती है जब वे स्वयं होने के लिये संघर्षशील थे, किंतु घंटियों, तिरस्कार और मानकीकृत परीक्षाओं के नीच भाग्य द्वारा तोड़ दिये गए थे। अन्यथा चुप रहने वाले बहुमत ने मुझे इसलिए लिखा क्योंकि वे कम से कम एक अन्य ऐसा व्यक्ति चाहते थे जो यह जाने कि उनके साथ क्या गलत हुआ।

मेरा *''डम्बिंग अस डाउन''* लिखना कैसे हुआ ? जब मैंने अपना प्रथम टीचर ऑफ द ईयर पुरस्कार 1990 में जीता, तब मैं समारोह में कुछ नहीं करना चाहता था सिवाय इसके कि पुरस्कार देने वाले को धन्यवाद कहूँ और श्रोताओं में अपनी बेटी की ओर हाथ हिलाऊँ या यदि मैं थोड़ा अधिक निडर होकर तो उसे मंच पर बुलाकर सार्वजनिक रूप से गले लगा लूँ (वैसा मैंने किया भी)। किंतु समारोह की पूर्व संध्या पर कई वर्षों पुराना मेरा एक छात्र मुझे बधाई देने आया। उसने सहज भाव से पूछा कि मैं क्या टिप्पणी करुँगा।

टिप्पणी! क्या बोलता है यह लड़का। मैंने कहा ''कोई भी एक सार्वजनिक स्कूल अध्यापक को भाषण देते सुनना नहीं चाहता।'' कोई टिप्पणी नहीं होगी।

''किंतु आपको भाषण तो दे*ना* ही होगा'', उसने कहा, ''आपको मेरे लिये बोलना होगा, जेनेट, जेन, जिल, एण्डी; आपकी वर्षों की कक्षाओं के लिये, आप उनका सार बतलाएँ कि उस सबका क्या अर्थ था।''

''कोई नहीं सुनेगा'', मैंने कहा।

''मैं सुनूँगा'', उसने कहा।

तो इस तरह ''द साइकोपैथिक स्कूल'' की रचना हुई, एक बैठक में, सारी रात कॉफी पीते हुए। जैसी की मुझे आशा थी, स्कूल जिले के अधिकारी (जो मुझे बेहद नापसंद करते थे) ने मुझे अगली सुबह हार्लेम स्कूल में पट्टिका (फ्लेक) थमा दी, न मुझसे कुछ पूछा न कोई टिप्पणी मेरे शब्दों पर की। लेकिन अगले छ : महीनों तक मुझसे सैकड़ों ने निवेदन किया कि इस पाठ्य को पुन: प्रकाशित करूँ। इसका एक भाग नेब्रास्का के सीनेटर बॉब कैरी ने कांग्रेस के रेकॉर्ड में भी शामिल करवाया।

''द साइकोपैथिक स्कूल'', इस पुस्तक के मुख्य निबंध, में अनेक रोगजनित नमूनों की चर्चा है जिनका अवलोकन मैंने अपने अध्यापन काल में बच्चों में किया जो

धनी थे तो गरीब भी थे। चारों ओर मेरे भाषण का तेजी से वितरण (मौखिक प्रचार व लघु पत्रिकाओं द्वारा) के कारण यह माँग उठने लगी कि इन रोगों के पीछे कौन सी निर्दिष्ट व्यवस्था कार्य कर रही होगी।

यह एक योग्य चुनौती थी, इसके लिये मुझे अपने आप से अठारह महीनों तक लड़ना पड़ा ताकि मैं सही उत्तर पा सकूँ। ठीक समय पर अलबानी में 1991 में मुझे न्यू यॉर्क स्टेट टीचर ऑफ द ईयर के लिये नामित किया गया, मुझे अपराध में अपनी भूमिका स्पष्ट तौर पर दिखाई देने लगी। ''द सेवन-लेसन स्कूल टीचर'' के अंश मेरे राजकीय शिक्षा आयुक्त के समक्ष स्वीकृति भाषण का निचोड़ है – और शीघ्र ही, उसका हज़ारों पत्रिकाओं में पुनर्मुद्रण हुआ, आप-एड पृष्ठों में तथा होमस्कूल पत्रिकाओं में। ये दोनों भाषण अंतिम क्षणों में तैयार किये गए थे, मैंने उन्हें कराहते हुए लिखा था और इसके लिये कोई युक्तिपूर्वक तर्क की प्रक्रिया नहीं थी जिससे मैं परिचित रहा होऊँ। वे मेरी उंगलियों से अल-सुबह के समय प्रस्फुटित होते गए, जिसका मुझे भी उतना ही आश्चर्य हुआ, जितना मेरे पाठकों को हुआ होगा।

इन व्याख्यानों (और अन्य भी थे, हर एक पर इस पुस्तक में एक अध्याय) के कारण अन्य घटनाएँ घटी जिन्होंने मेरी कुछ सबसे मूल्यवान पूर्व धारणाओं को चुनौती दी : चारों ओर से संबोधित करने हेतु आमंत्रणों का सैलाब आ गया, ये समूह एक दूसरे के इतने कट्टर विरोधी थे कि उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा किया जाता तो वे अवश्य लड़ मरते। संक्षेप में, पेनिसिल्वेनिया के मोनोंगहेला का एक व्यक्ति, जिसने अपने वयस्क जीवन का बहुत बड़ा भाग तेरह वर्षीय बच्चों से बातें करते हुए व्यतीत किया था, उसने खुद को पश्चिमी व्हाइट हाउस, पुराने सीनेट कार्यालय भवन, केटो इन्स्टीट्यूट, द नैशविले सेंटर फॉर आर्ट्स, द नासा स्पेस सेंटर्स के ''इंजीनियर्स कोलोक्वियम'', एपल कम्प्यूटर्स, द ईगल फोरम, द यूनाइटेड टेकनालाजीज कार्पोरेशन, तथा फार्म कम्यून के साथ-साथ सिंगापुर, कुआलालुंपुर, बोगोटा व अन्य स्थानों के शासकीय ब्यूरो के सामने बोलता पाया – तमाम जगहें जहाँ मैं गत दस वर्षों के दौरान पंद्रह लाख मीलों का सफर करते हुए गया।

यद्यपि मैं विविध प्रकार के श्रोताओं और स्थितियों के अनुरूप वस्त्र बदलता रहा, मेरा केंद्रीय संदेश एक ही रहा (और आज भी है) कि अनिवार्य संस्थात्मक स्कूलिंग को

सुधारा ही नहीं जा सकता क्योंकि वह पहले से ही अवांछित सफलता है! वह बड़ी कुशलता से ठीक वही करती है, जिसके लिये उसकी संरचना की गई है, अर्थात्, वह केंद्रीकृत थोक उत्पादन अर्थव्यवस्था का ''शैक्षणिक'' घटक है जिसका निर्देशन मुट्ठीभर आदेश केंद्र करते हैं। ऐसी अर्थव्यवस्था की अत्यंत व्यग्र आवश्यकताएँ होती हैं, वे चलती रहें, इसके लिये उन्हें विशेष प्रकार का ''मानव संसाधन'' चाहिये, मुख्यतया ऐसा जो वस्तुओं को खरीदकर अपने आप को व्यक्त कर सके, जो गैर ज़रूरी चीज़ों को अपनाए, जहाँ हर चीज का मूल्यांकन आराम, भौतिक सुरक्षा तथा हैसियत की अवधारणा से किया जाता है।

स्कूल बड़ा प्रबल यांत्रिकत्व है जो आने वाली पीढ़ियों को संपूर्ण प्रबंधन को स्वीकार करने के लिये तैयार करता है, वह हममें से कइयों पर जीवन भर के लिये वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम पर बचकानापन लाद देता है। कुशल प्रबंधन के लिये अपूर्ण लोगों की आवश्यकता होती है जिनका प्रबंध किया जा सके क्योंकि संपूर्ण लोग, या जो पूर्णता के लिये प्रयत्नशील हों, वे विस्तारित सरपरस्ती को अस्वीकार कर देते हैं। संपूर्ण प्रबंधन के अंतर्गत बढ़ना असंभव है, चाहे वह टोटल *क्वालिटी* मैंनेजमेंट हो या अन्य कोई प्रकार। केंद्रीकृत थोक उत्पादन अर्थव्यवस्था, लेकिन, इससे कम की माँग नहीं करती, यदि उसे टिके रहना हो।

''ग्रीन मोनोंगहेला'', अन्यों की भाँति, मेरे ऑडीटरों के सतत प्रश्नो के उत्तर में लिखा गया था जो यह जानना चाहते थे कि मैं कौन था और मुझमें इस तरह की सोच कैसे आई। इसके पीछे एक गुप्त विवरण है जिसे अब मैं प्रकट करने के लिये तैयार हूँ, और उन सब लोगों को दिखाना चाहता हूँ जिनमें उनके लालन-पालन के चिन्ह मौजूद हैं (विविध किस्म के विशेषज्ञों ने अनेक सिद्धांत जीवन भर की परिसीमाओं पर प्रस्तुत किये हैं), कि सामाजिक विज्ञान अधिकतर कोरी बकवास है – बल्कि खतरनाक बकवास है। यह छद्म वैज्ञानिक रीति से अनेक अधीनस्थताओं के औचित्य को सिद्ध करना चाहता है जो आधुनिक प्रबंधन, प्रबंधित होने वालों पर लागू करता है। यदि मैं अपने निजी अनुभवों से बतला सकता कि मैं ठीक-ठाक निकल सका, हालाँकि मैं विलक्षण प्रतिभावानों के परिवार से हूँ, जो एक-दूसरे से प्रतिदिन नाखूनों और दाँतों से लड़ते थे, जिससे कि मैं स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, सभ्य और काफी हद तक सिद्धांतवादी बना। यद्यपि

यदि अधिकारी जान पाते कि कुछ घटनाएँ जो हमारे दरवाज़ों के पीछे घटी थीं, तो हम लोग बड़ी मुसीबत में पड़ जाते। मैं वह दर्पण बन सकता हूँ जिसमें लोग अपनी कहानियों की छवियाँ देख सकते और उनकी पुष्टि करते। अपने स्वयं के अनुभव से मैं विशेषज्ञता के उस पंथ का जीता-जागता खंडन बनने की आशा रखता था जिसने हमारी स्वाधीनता के हर पहलू को विषाक्त कर दिया है। समय रहते हम इस स्थिति को सुधारें। यह कभी वह भूमि थी जहाँ हर कोई कैसे घर बनाना, अनाज उगाना और एक-दूसरे का सत्कार करना जानता था। अब हमें स्थायी बच्चे बनाकर छोड़ दिया गया है। इसका शिल्पी अनिवार्य स्कूल प्रणाली है और वही इसके लिये जिम्मेदार है।

बच्चों के लिये मूल्यवान होने के लिये उपाय ढूँढने में सफल होने का श्रेय मैं अपने परिवार के दैवयोग को देता हूँ और उस स्थान में बड़ा होने के दैवयोग को – मोनोंगहेला में – जहाँ लोग उसे मुक्का जड़ देते थे जो उनके क्रियाकलापों में अनावश्यक रुचि लेता प्रतीत होता था। और उस तथ्य को कि मेरे बंधन रहित पालन-पोषण ने मुझे अनायास ही दमनकारी योजनाओं का ध्वंसक बना दिया। ऐसा न हो कि वह खाली अतिशयोक्ति ही रह जाए, मुझे स्वीकार करने दीजिए कि बतौर स्कूल शिक्षक अपने जीवन के प्रत्येक दिन प्रात: दाढ़ी बनाते समय मैं एक प्रार्थना का अपने से ही पाठ करता था। उसमें मैं प्रतिज्ञा करता था कि मैं हर दिन कोई रास्ता तलाशने की कोशिश करूँगा, चाहे वह बहुत छोटा ही क्यों न हो, कि कैसे मैं व्यवस्था के गियर में रुकावट डाल सकूँ। किसी दिन मैं इस पर सविस्तार लिखूँगा परंतु कदाचित उपनाम से, क्योंकि वे विवरण अवश्य मुझे सींखचों के पीछे पहुँचा देंगे! मैं आपसे आव्हान करता हूँ जो मुझसे पूछते हैं कि वे भी ध्वंसक बनने हेतु स्कूल में क्या करें, पानी की एक छोटी बूँद कैसे बनें जो इस बलात् थोपी गई संस्थात्मक स्कूलिंग की बजंर भूमि को तहस-नहस कर सके।

इस पुस्तक के अंतिम दो निबंध ''वी नीड लेस स्कूल, नाट मोर'' और ''द कांग्रेगेशनल प्रिंसिपल'', मेरे उन प्रयत्नों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें मैंने आधुनिक स्कूलिंग की समस्या के निदान हेतु एक खाका तैयार किया है। एक दफा, बहुत समय पहले, हमने समस्या का निराकरण कर लिया था और दूसरों के लिये उम्मीद की मशाल बन गए थे। औद्योगिक समाज के उदय ने – जिसने सस्ती, असीमित ऊर्जा के जरिये धन वर्षा का ऐसा सब्जबाग दिखलाया जो बेमिसाल था, काश सामान्य लोगों

में स्वंतत्रता के ऐसे आवेगों की बागडोर पुन: थामी जा सके – जिसने पूर्व के आविष्कारों की अत्यल्प मात्रा को आच्छादित कर रखा है, किंतु इतना गहरा नहीं कि उसे पुन: खोदकर बाहर न लाया जा सके, कि वे पुनर्जीवित होकर ध्वजवाहक बन सकें जिसका लोग अनुसरण करें। इन निबंधों को धीमे-धीमे पढ़िये, यह भूल जाइए कि किस तरह संपूर्ण स्कूलिंग ने ऐतिहासिक समझ की सर्वोच्च प्रकृति पर आपकी पकड़ को नष्ट किया है, मेरे तर्कों के सूक्ष्मभावों के साथ बहस कीजिए – श्रेष्ठतम् अमेरिका बहस से ताल्लुक रखता है एक अपरिपक्व सर्वसम्मति से नहीं। दोनों ही निबंध कम खर्च विकल्पों को सामने रखते हैं – इन अल्पमति (मूर्ख) संस्थानों के सामने जो बच्चों के जीवन का गला घोंट रहे हैं।

''डम्बिंग अस डाउन'' के बाद, मैंने चार अन्य पुस्तके लिखीं, एक महाकाव्य जो अभी तक अप्रकाशित है और जिसका नाम है ''द एडवेंचर्स ऑफ स्नाइडर, द सीआईए स्पाइडर।'' किंतु *''डम्बिंग अस डाउन''* मेरी सर्वाधिक पसंदीदा है क्योंकि उसने मेरी आँखें उस नुकसान के लिये खोल दी, जो मैंने अपनी जीविका के लिये किया था।

इन दिनों मैं अपने 128 एकड़ के फार्म पर जो अपस्टेट न्यू यॉर्क में स्थित है, वहाँ एक ग्रामीण एकांत स्थान (रिट्रीट) तथा पुस्तकालय बनाने का प्रयास कर रहा हूँ। इस जगह को मैं ''सालीट्यूड'' कहना चाहता हूँ, और यह नाम उसके विषय में सब कुछ बता देता है। यदि मैं इस भूमि का मालिक न होता और न्यू यॉर्क शहर की कर्कश आवाजों के मिश्रण से दूर न जा पाता, समय-समय पर अपने आपके साथ न रह पाता, तो मेरा उत्साह अवश्य मर जाता, मेरी आत्मा इतनी विकृत हो जाती कि उसे दुरुस्त करना लगभग असंभव हो जाता। अब मेरे पास लगभग सौ हज़ार (डॉलर) इसे पूरा करने में कम पड़ रहे हैं, अत: आप किसी देवदूत के बारे में सुनें, तो मुझे बताएँ। मैं पहले सालीट्यूड रिट्रीट के माध्यम से प्रत्येक शहर, गाँव को, हर महानगर के पड़ोस को बतलाना चाहूँगा कि यह कितना सरल और बेशकीमती हैं कि ऐसे सार्वजनिक संसाधन उपलब्ध किये जा सकते हैं – एक ऐसी जगह जहाँ व्यक्ति कुछ पल अपने ही साथ व्यतीत कर सके बिना किसी कार्यक्रम के, बिना विषयसूची के, बिना व्याख्यान के, बिना कक्षाओं के, बिना नियोजित मनोरंजन के।

और मेरे दिमाग में एक बड़ी शरारत आकार ले रही है, एक लंबी विश्वसनीय डॉक्यूमेंटरी फिल्म, आधुनिक संस्थात्मक अनिवार्य स्कूलिंग के इतिहास और विसंगतियों पर (और उनके इलाज पर भी) बनाने की। इस योजना के लिये केवल छ: से सात मिलियन (डॉलर) कम पड़ रहे हैं – किंतु पटकथा तैयार है, सहयोगियों का राष्ट्रीय नेटवर्क बना लिया गया है, निर्माण कर्मी तय कर लिये गए हैं। मेरा पूर्व छात्र जिसने मुझे ''साइकोपैथिक स्कूल'' लिखने हेतु उकसाया – और उसी के कारण यह पूरी पुस्तक लिखी गई – अच्छा फिल्म निर्माता है, वह इसका निर्देशक होगा।

परंतु इन उपक्रमों का किंचित विवरण मेरी वेबसाइट (www.johntaylorgatto.com) पर उपलब्ध है, जहाँ यदि पिशाच आप पर भारी पड़े तो आप अपने विचार समय-समय पर भेजते रहें। मैं उत्तर देने का वादा तो नहीं कर सकता, क्योंकि आपकी तरह में भी प्राय: अभिभूत हो जाता हूँ, परंतु मैं वादा करता हूँ कि प्रत्येक लिखे को दो बार अवश्य पढ़ूँगा और आप जो भी कहना चाहते हैं उस पर गंभीरता से सोचूँगा।

ईश्वर की कृपा हम सब पर बनी रहे।

जॉन टेलर गेट्टो
ऑक्सफोर्ड, न्यू यॉर्क
जनवरी, 2002

ताजा कलम, 2005

प्रकाशक की ओर से

7 अप्रैल, 2004 के *मिड-हडसन हाईलेंड* पोस्ट के अंक में एक लेख जॉन गेट्टो के हाईलेंड हाई स्कूल में आने के विषय में छपा। शीर्षक था ''रेन्डर्ड स्पीचलेस'', रिपोर्ट को उपशीर्षक दिया गया था ''एडवोकेट फॉर एजुकेशन रिफार्म ब्रिंग्स काट्रोवर्सी टु हाईलैंड'' (शिक्षा सुधार की वकालत करने वाला हाईलैंड में विवाद लेकर आया)

लेख 25 मार्च की शाम की घटना का उल्लेख करता है जिसमें जॉन गेट्टो की आधी प्रस्तुति को स्कूल अधीक्षक ने निरस्त कर दिया था क्योंकि ''हाईलैंड टीचर्स एसोसिएशन ने शिकायत की थी कि प्रस्तुति अत्यंत विवादास्पद है।'' दरअसल निरस्तीकरण उस वीडियो प्रस्तुति के चलते किया गया जिसमें कुछ हिंसा दिखाई गई थी। परंतु सेवानिवृत्त छात्र काउंसलर पाल विस्ज़ ऐसी राय नहीं रखते, जिन्होंने बताया कि बाद में उनकी जिन दस बारह छात्रों से बात हुई उनमें से कोई भी हिंसा को लेकर उत्साहित नहीं था। उनके मतानुसार, गेट्टो का विरोध करने वाले कुछ लोगों ने वीडियो प्रस्तुती को देखा था। बल्कि, ''वे शिक्षक संघ के कहने पर आए थे जो प्रस्तुती के स्वर से परेशान था।'' उन्होंने आगे कहा, ''श्री गेट्टो ने मूलत: शिक्षकों को कहा था कि वे बच्चों को ठीक से सेवा नहीं दे रहे हैं, विद्यार्थियों को सच बतलाना चाहिये,

उन्हें वास्तविक जीवन के अनुभवों की सीख देनी चाहिये और खुद अपनी शिक्षा के प्रति उन्हें उत्तरदायी होना चाहिये। (गेट्टो) ने मानकीकृत परीक्षाओं की वैधता और प्रासंगिकता पर आपत्ति की, स्कूल के जेल वातावरण तथा छात्रों को दिये जा रहे प्रासंगिक अनुभव के अभाव की चर्चा की। उन्होंने बताया कि गेट्टो के पास अभिभावको के लिये भी महत्त्वपूर्ण संदेश था: ''कि आपको अपने बच्चों की शिक्षा का नियंत्रण अपने हाथों में लेना चाहिये।''

हाईलेंड हाईस्कूल के सीनियर क्रिस हार्ट ने स्कूल मंडल से अनुशंसा की कि गेट्टो को बोलने हेतु बुलाया जाए, और चाहा कि अधिक से अधिक छात्र उनके संदेश को सुने। सीनियर केटी हेनली ने व्याख्यान को उसकी नई अवधारणा के कारण पसंद किया और कहा कि ''यह महत्त्वपूर्ण था क्योंकि उसने एक नया विनियम प्रारंभ किया तथा छात्रों को अपने बारे में सोचने हेतु प्रेरित किया।'' हाईस्कूल जूनियर क्विंगगुओं के लिए ''गेट्टो'' प्रेरणादायी रहा। हाईलेंड शिक्षक आलीज़ा ड्रिलर कालांगेलो भी गेट्टो से प्रेरित हुई और ''खतरा मोल लेने वाले' की अनुशंसा करते हुए कहा कि व्याख्यान के बाद उसकी कक्षा में उत्साहवर्धक विचारों का विनियम हुआ। जैकिविक्ज़ का कथन था, ''छात्र उठाए गए मुद्दो पर चर्चा हेतु उत्सुक थे।'' दुर्भाग्य से कुछ शिक्षकों को छोड़कर जिन्होंने छात्रों से चर्चा का साहस प्रदर्शित किया, हमारे स्कूल ने वह बहस ही नहीं होने दी।

जो समाचार पत्र में *नहीं* बताया गया था वो हकीकत यह थी कि स्कूल अधिकारियों ने पुलिस को ''शांति स्थापित करने'' के लिये बुला लिया था, जबकि शांति के लिये लेशमात्र भी खतरा नहीं था क्योंकि छात्र श्रोताओं का व्यवहार प्रशंसनीय था तथा वे अंत तक ध्यानपूर्वक सुनते रहे। सांयकालीन कार्यक्रमानुसार गेट्टो और अभिभावक संघ के बीच बैठक को आरंभ होने के पहले ही जिला स्कूल अधिकारियों ने प्रतिबंधित कर दिया जो मुक्त विचार एवं मुक्त सभा करने के सिद्धांतो पर अंतिम प्रहार था...

सिवाय इस दु:खद कथा के जॉन टेलर गेट्टो के काम के स्थायी महत्त्व का इससे बेहतर कोई प्रदर्शन नहीं हो सकता था, जो इस छोटी सी पुस्तक ने साबित किया है। यह

गेट्टो के विचारों की शक्ति का, उसकी महत्ता का तथा उसकी प्रासंगिकता की निरंतरता का पैमाना है कि स्कूल अधिकारी अभी भी, उसके आरंभिक प्रकाशन के 12 वर्ष पश्चात् भी, उस पर चर्चा करने से भी घबराते हैं – यह धर्मयुद्ध जारी रहे!

क्रिस प्लांट
गेब्रिओला आयलैंड, बी.सी.
फरवरी, 2005

बनियन ट्री के बारे में

बनियन ट्री ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन एवं वितरण करते हैं जो जड़ एवं चेतन के संबंधों को आपस में जोड़ती हैं। हमारी पुस्तकें संस्थानीकृत विश्व की पूर्व परिभाषित अवधारणाओं को चुनौती देती हैं; अपनी परंपरागत एवं् सांस्कृतिक जड़ों की ताकत की समझ को उसी प्रकार सुद्रढ़ करती हैं जैसे कि बरगद की जड़ें।

यहाँ आपको ऐसी पुस्तकें मिलेंगी जो ज्ञान, संस्कृति व परंपरा के संस्थानीकरण को चुनौती देती हैं; पुस्तकें जो भोजन, स्वास्थ्य एवं कृषि के नियंत्रण और मिलावट को चुनौती देती हैं; सीखने, स्कूल-विहीन शिक्षा तथा, परिवेष के टिकाऊ विकास पर पुस्तकें। हमारा यह अटल विश्वास है कि *''कुछ भी पढ़ाया नहीं जा सकता''* तथा *''काम ही गुरू है''* । यहाँ आप अंग्रेजी, हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं में पुस्तकें खरीद सकते हैं।

हम उन व्यक्तियों की भी सहायता करते हैं, जो वैकल्पिक मीडिया, सामुदायिक ज्ञान एवं टिकाऊ विकास के क्षेत्र में अपना रास्ता स्वयं तलाशना चाहते हैं। जिन्हें रुचि हो वे हमें लिख सकते हैं।

बनियन ट्री

1-बी, धेनुमार्केट, दूसरा माला
इंदौर – 452003, इण्डिया
टेली : 91-731-2531488, 2532243
मोबाइल : 9425904428
ई-मेल: banyantreebookstore@gmail.com
वेबसाइट: www.banyantreebookstore.weebly.com
www.banyantreebookstore.com

लगातार बजने वाली घंटियाँ, एक कक्ष से दूसरे कक्ष में, प्रतिदीन आठ घंटे की कैद, आयु के अनुसार सब्जी-भाजियों की तरह विभाजन, निजता की कमी और निरंतर निगरानी, क्रियाशील समुदाय से पूरी तरह काटकर तथा स्कूल के बाकी सभी *पाठ्यक्रमों* की रचना इस प्रकार की गई है कि हमारे बच्चों को यह न सीखने दिया जाये कि वे किस तरह सोच समझकर कार्य करें – वे हमेशा दूसरों पर निर्भर बने रहें।

तीस वर्ष तक सरकारी स्कूलों में पढ़ाने और लगातार पुरस्कार जीतने के बाद जॉन टेलर गेट्टो इस दु:खद निर्णय पर पहुँचे कि स्कूलिंग का शिक्षा में कोई वास्ता नहीं है – बहुत ही थोड़ा सा – बल्कि युवाओं को यह सिखाना कि कैसे आर्थिक और सामाजिक प्रणाली की चाकरी की जाये। *डंबिंग अस डाउन* वर्तमान स्कूली शिक्षा प्रणाली की कई *भयानक* वास्तविकताओं को उजागर करती है और उन अभिभावकों के लिए एक पथ-प्रदर्शक बन गई है जो *''दूसरा और सही रास्ता''* तलाशना चाहते हैं। यह पुस्तक भारतीय संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है और हमें यह सोचने को बाध्य करती है कि हम कैसे हमारे बच्चों को शिक्षित करें – और किसके लिए।

जॉन टेलर गेट्टो ने न्यूयार्क सिटी पब्लिक स्कूल में तीस वर्षों तक पढ़ाया है। उन्हें इस दौरान न्यू यार्क सिटी टीचर अवार्ड और न्यू यार्क स्टेट टीचर अवार्ड से भी पुरस्कृत किया गया था। शिक्षा में नई सोच को लेकर वे काफी लोकप्रिय वक्ता हैं और अपने व्याख्यानों के लिए उन्होंने पुरे उत्तर अमरीका में करीब 15 लाख मील की लंबी यात्राऐं की है। उनकी प्रलयकारी पुस्तक *''डंबिंग अस डाउन''* की अंग्रेजी में अब तक *दो लाख* से भी ज्यादह प्रतियाँ छप चुकी हैं। हाल ही में सत्याग्रह की भावना से उन्होंने मानकीकृत परीक्षा को तोड़ने और शिक्षा प्रणाली से असहयोग करने के लिए एक आंदोलन की शुरूआत की है – परीक्षा पुस्तकों में यह लिखना कि *''मैं आपका टेस्ट नहीं लेना पसंद करूँगा।''* उनकी अन्य पुस्तकें हैं, *ए डिफरेंट काइन्ड ऑफ टीचर, द अण्डरग्राउन्ड हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन एजुकेशन* और *विपन्स ऑफ मास इन्स्ट्रक्शन* (बनियन ट्री)।

इस पुस्तक को प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

बनियन ट्री
1-बी, धेनुमार्केट, दूसरा माला
इंदौर - 452003, इण्डिया
टेली : 91-731-2531488, 2532243
मोबाइल : 91-9425904428
e-mail: banyantreebookstore@gmail.com
website: www.banayantreebookstore.weebly.com
www.banyantreebookstore.com

BANYAN TREE ₹ 200
ISBN: 978-93-82400-00-4
9 789382 400004

सिर्फ भारतीय उपमहाद्वीप में बिक्री के लिए